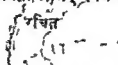


भगवान् महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष पर प्रकाशित

श्री सत्सङ्गज्ज्ञीय गान्धर्व मन्दिर लुधियाना
अभयजैन ग्रन्थमाला ग्रन्थांक-३३

अध्यात्म तत्त्ववेत्ता श्रीमद् देवचन्द्रगणि-



द्रव्य प्रकाश

द्रव्य प्रकाश सार की लेखिका

विदुषी आचार्यजी श्री सज्जन श्रीजी

आचार्य महाराज

पूज्य मुनि श्री जयानन्दजी के सदुपदेश से प्राप्त

प्रकाशक

अभय जैन ग्रन्थमाला

C/o अगरचन्द नाहटा

नाहटों की गली

बीकानेर (राजस्थान)

प्रकाशन वर्ष २०२०

मूल्य ०) १०

अनुक्रमणिका

भूमिका—अगरचन्द नाहटा

द्रव्य प्रकाश मूल—देवचन्द्र जी

(१) प्रथम द्वार(४ द्रव्य अधिकार, पद्य ६६, पृष्ठ १ से १८)

(२) द्वितीय द्वार (पुद्गल परमाणु व कर्म अधिकार)
पद्य ३५, पृष्ठ १६ से २५

(३) तृतीय जीव द्वार A पद्य ४४, पृष्ठ २६ से ३८
B मुक्ति द्वार पद्य ४५ से १६८
पृष्ठ ३८ से ६८

३ द्रव्य प्रकाश सार पृष्ठ ६६ से १२८ ~~ले~~ श्रीसज्जन श्रीजी

मुद्रक
हर्षगुप्त
राष्ट्रीय प्रेस,
डैम्पियर नगर, मथुरा ।

भूमिका

भारत आध्यात्म प्रधान देश है। यहाँ ऋषि—मुनियों एवं आत्मदर्शी भाषकों के चरणों में चक्रवर्ती आदि सदा से नमन करते रहे हैं, अर्थात् बाह्य समृद्धि को यहाँ इतना महत्त्व नहीं दिया गया, जितना आत्मनिष्ठ महापुरुषों को दिया गया है। उपनिषद् गीता, योगवाशिष्ठ, जैन आगमों आदि अनेकों जैन जनेतर ग्रंथ आध्यात्मिक प्रेरणा देते रहे हैं। जैन तीर्थंकरों ने तो स्वयं भोगों को छोड़ कर त्याग का मार्ग अपनाया और आत्मा की सर्वोच्च-स्थिति 'मोक्ष' को प्राप्त किया। उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया कि 'जिसने एक आत्मा को जान लिया, उसने सबको जान लिया।' और सबको जान लेने के बाद भी अतत्त मुख्य रूप से तो आत्मा ही हो जानना होता है एक आत्म-विगुद्धि से ही मोक्ष मिलता है। इसलिए जैन दर्शन तो सर्वोच्च आध्यात्मिक स्थिति को ही महत्त्व देता है। आज ये भौतिकवादी युग में आध्यात्मिक प्रगति के लिए तीर्थंकरों, मत—महात्माओं के भाषों या प्रचार बहुत ही जरूरी है, वही विश्व को शांति और कल्याण दे सकता है। इसलिए आध्यात्मिक साहित्य को अधिकाधिक प्रकाशित एवं प्रसारित करना अत्यावश्यक है। प्रस्तुत 'द्रव्य प्रकाश' ग्रंथ भी उगी श्रेणी का एक परमोज्जन रत्न है, जिसके पढ़ने पाठने में आत्म प्राप्ति या आर प्रगति होती है।

जैन दर्शन के अनुसार यह विश्व छ द्रव्यों का समूह—समूह—मना है। उनमें से पाँच द्रव्य तो जड़ हैं, (१) पदान्निर्माण (गन्धरास) (२) अक्षरमिनिर्माण (३) आकाशमिनिर्माण (४) पुरु-

गलास्तिकाय और (५) कल । छठा द्रव्य जीवास्तिकाय, चैतन्य-ज्ञान स्वरूप है । अन. मूलतः जड़ और चैतन ये दो ही द्रव्य हैं । चैतन्य स्वरूप आत्मा अनादिकाल से पुद्गलास्तिकाय (जड़) के साथ रहने के कारण अपने स्वरूप को भूल चुका है और पुद्गलों के निर्मित-शरीरादि सभी दृश्यमान पदार्थों में मैं और मेरापना स्थापित करके कर्म-मल सचय करते हुए संसार में परिभ्रमण कर रहा है । इस भवभ्रमण को मिटाने के लिए ही, आध्यात्मिक साहित्य के स्वाध्याय की आवश्यकता है ।

प्रस्तुत द्रव्य प्रकाश में जैन धर्म मान्य छः द्रव्यों का वर्णन है । इस ग्रन्थ के तीन द्वार हैं । उनमें से पहले में प्रारम्भिक भूमिका के ३९ पद्यों के बाद धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल इन चार द्रव्यों का विवेचन पद्यांक ४० से ६६ तक किया गया है । दूसरे द्वार में पुद्गल परमाणु और कर्मों का विवेचन ३५ पद्यों में किया गया है । तीसरा 'जीवद्वार' सबसे बड़ा है, जो १६८ पद्यों का है । इसमें पहले आत्माका स्वरूप बतलाकर फिर मुक्ति मार्ग का निरूपण पद्यांक ४५ से किया गया है । इसलिए तीसरे जीव द्वार को अनुवादिका सज्जन श्री जी ने पूर्वाद्धि और उत्तराद्धि इन दो भागों में विभक्त कर दिया है । ग्रन्थ के प्रारम्भ के छठे एवं अन्त के १५२ वे पद्य में कवि देवचन्द्र जी ने अपनी लघुता प्रदर्शित की है । पद्यांक १५३ में पाठक हंसराज की १२८ पद्यों वाली जिस रचना का उल्लेख किया है, उसका अभी तक पता नहीं चल सका है ।

द्रव्य प्रकाशकी रचना तत्कालीन ब्रज या हिन्दी भाषा में श्रीकानेर में रहते हुए देवचन्द्र जी ने भगवान् ऋषभ देव जी के मोक्ष

वे दिन अर्थात् स० १७६७ माघ वदी १३ को पूरा की है। इसमें सहायक 'दुर्गदास' का उल्लेख पद्यांक १५८ में किया है और पद्यांक १५९ में मुलतान के आध्यात्म प्रेमी मिटठूमल, भरुदास, भेउदास, मूलचन्द आदि श्रावकों की धर्म-प्रीति के कारण इस ग्रन्थ के रचे जाने का उल्लेख किया है।

द्रव्य प्रकाश के तीनों द्वारों में क्रमशः ६६, ३५ और १६८ पद्य हैं अर्थात् कुल सन्ख्या २६९ है। इसमें दोहा, सर्वथा (इक्तीसा और तेईसा) छंद का विशेष प्रयोग हुआ है। जैसे चौपाई, सौरठा, चन्द्रायणा, पद्यही, अडिल, कवित्त, छप्पय और कुडलिमा छंद भी प्रयुक्त हैं। यद्यपि 'श्रीमद् देव चन्द्र' नामक ग्रन्थ में यह 'द्रव्य प्रकाश' पहले उपाया पर पूज्य योगेश्वर युग प्रधान श्री सहजानन्दजी की प्रेरणा से हमने श्रीमद् देवचन्द्रजी की पद्यबद्ध रचनाओं की पाण्डुलिपि हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर की है, इसी के अतिरिक्त हमारे 'जय जैन गन्थालय' और 'शरत्तरगच्छ' के 'बड़े ज्ञान भण्डार' की हस्तलिखित प्रतियों के आधार में इसका पाठ तैयार किया है। ग्रन्थ पद्यबद्ध और उसकी भाषा २६५ वर्ष पुरानी होने से पाठकों का समझने में कठिनाई होगी, इसीलिए विदुषी आर्यावर्य सज्जन श्री जी ने इस ग्रन्थ का सारा गद्य में निरुवाके मूलग्रन्थ के बाद इस मन्स्वरण में दे दिया गया है। आशा है तत्त्व जिनानु और आध्यात्म प्रेमी पाठक गण अब इस मन्स्वरण में अधिक लाभ उठा सकेंगे।

द्रव्य प्रकाश के रचयिता 'शरत्तरगच्छ' के महान् तत्त्वज्ञ विद्वान् श्रीमद् देवचन्द्रजी हैं। उनका जन्म बीकानेर के निवटवर्ती ग्राम निवासी लूणीया तुलसीदास जी धर्मपत्नी धनवाई की कुक्षी में स० १७४६ में हुआ था। सधु वय में ही वे शरत्तर गच्छीय वाचक राजमागरजी के शानिध में आ गये और १३ वर्ष की आयु में तो

आपने उनसे दीक्षा भी ग्रहण कर ली। आपका जन्म नाम देवचन्द्र था, दीक्षा नाम 'राज विमल' रखा गया। आपने 'ध्यान-दीपिका चौपाई आदि में अपने दीक्षा नाम 'राजविमल' का भी उल्लेख किया है' पर आपका मूल नाम देवचन्द्र ही अधिक प्रसिद्ध रहा। आपकी जीवनी के सम्बन्ध में तपागच्छीय कवि ने 'देव-विलास' काव्य बनाया है, उसके अनुसार बेनारस में दीक्षा गुरु राजसागर के दिए हुए सरस्वती मंत्र की साधना करके आपने सरस्वती की कृपा प्राप्त की। थोड़े वर्षों में ही आपने अध्ययन करके अच्छी विद्वत्ता प्राप्त कर ली। यु० जिनचन्द्र मृगजी (चौथे दादा सा०) की परम्परा के वाचक राजसारजी थे। उन्होंने अपने शिष्य ज्ञान धर्म के शिष्य दीप चन्द्र, जिनका दीक्षा नाम राज हुआ था, आपको उनका शिष्य घोषित किया था। अपने गुरुजनो के साथ आप नं० १७९५-९६ में मुलतान पधारे। वहाँ उस समय कविवर बनारसी दास जी के आध्यात्म-मत का बड़ा प्रभाव था। उस 'आध्यात्म-शैली में कई श्वेताम्बर श्रावक रंग गये थे, और जो भी श्वे० मुनि-यति उधर पधारते, उनसे वे आध्यात्मिक ग्रन्थों को मुनते एवं आध्यात्म चर्चा करके उन मुनियों को आध्यात्म रंग में रंग देते थे। इसी के फल स्वरूप खरतर गच्छीय कवि मुमति-रंग, धर्म-मन्दिर आदि ने प्राचीन आध्यात्मिक ग्रन्थों को राजस्थानी काव्य के रूप में अनुवादित किया। जब श्रीमद् देवचन्द्र जी को भी उन आध्यात्म प्रेमी श्रावकों का सुयोग और सत्संग मिला तो उन्होंने भी सबसे पहले दि० शुभ चन्द्र के ज्ञानार्णव ग्रन्थ को आपने राजस्थानी भाषा में ढाल बद्ध बनाया। ६ खण्ड और १८ ढालों में रचित उनका 'ध्यान दीपिका चतुस्प्रदी' की आपने मुलतान में रहते हुए, वहाँ के आध्यात्म-वेत्ता भणसांली मिट्ठूमल के आग्रह से स० १७६६ के वैशाख वदी १३ रविवार को रचना की है। उसके बाद आपका बीकानेर पधारना

हुआ और म० १७६७ के माघ वदी १३ की 'द्रव्य प्रकाश' की रचना भी मुल्तान के उन आध्यात्म प्रेमी श्रावको के लिए रज भावा में पद्य वद्ध की। इसके बाद तो आपने और भी अनेक द्रव्यानुयोग के ग्रन्थ और विशेषतः कमशास्त्रादिका का गम्भीर अध्ययन किया। साथ ही आध्यात्म का रंग भी उत्तरोत्तर गहग अमर करना गया। इसलिये जीवन पयन्त जैन तत्त्वज्ञान और आध्यात्म सम्बन्धी साहित्य प्राकृत, मरुत्त, राजस्थानी, हिन्दी, गुजराती में प्रचुर परिणाम में आप रचते रहे हैं। उन सबको संग्रहीत करके प्रकाशित करने का श्रेय तपागच्छीय जैन योगीराज बुद्धि सागर सूरि जी को है, जो श्रीमद् देवचन्द्र जी के परमभक्त थे। उन्होंने म० १९६८ में देवचन्द्र जी रचित गमस्त साहित्य को ढूँढकर प्रकाशित करने की प्रेरणा अपने आध्यात्म-प्रेमी भक्त जनों की और उसीके फलस्वरूप 'श्रीमद् देवचन्द्र' नामक ग्रन्थ दो बड़े भागों में 'श्री आध्यात्मज्ञान प्रसारक मण्डल' में प्रकाशित हुआ। उन ग्रन्थों को आध्यात्म प्रेमी जनता ने खूब अपनाया अतः उनको नये रूप में, पीछे से प्राप्त रचनाओं के साथ तीन भागों में प्रकाशित करने की योजना बनी। उनमें से प्रथम भाग में गद्य रचनाओं और द्वितीय भाग में पद्य रचनाओं का संग्रह स० १९८५ में प्रकाशित हो गया। आपकी सम्पूत रचना के संग्रह वाले तीसरे भाग का प्रकाशन नहीं हो सका। उक्त 'श्रीमद् देवचन्द्र' ग्रन्थ के दूसरे भाग में यह 'द्रव्य प्रकाश' ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था।

'द्रव्य प्रकाश' की रचना के बाद भी कई वर्ष श्रीमद् देवचन्द्र जी राजस्थान और पंजाब सिन्ध में विचरते रहे। म० १९७६ में आपने 'आगमसार' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना मरोठ में रहते हुए दुर्गादाम की सहाय से घम घममित्र के लिए की थी। उसमें भी

‘द्रव्य प्रकाश’ में वर्णित छ द्रव्यों का गद्य में अच्छा वर्णन पाया जाता है। अतः “आगम सार” भी पाठकों को अवश्य पढ़ना चाहिए। उसके दो हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम चिदानन्द जी का दूसरा आनन्द सागर जी का है।

‘आगमसार’ की रचना के बाद स. १७७६ में आपका गुजरात की ओर विहार हुआ। उस समय पाटन में नगर सेठ तेजसी, सह-नृकूट जिनालय बना रहे थे। जब श्री ज्ञानविमल सूरि सहनृकूट के नाम बतला नहीं सके तो देवचन्द्र जी ने बतला कर ज्ञानविमल सूरि को प्रभावित किया एवं गुजरात में आपकी प्रसिद्धि बढ़ती गई। साध्वाचार में आई हुई शिथिलता का परिहार करके आपने किया उद्धार अर्थात् बुद्ध साध्वाचार का पालन प्रारम्भ किया। इस तरह ज्ञान और चारित्र्य दोनों में आपने खूब उन्नति की। इसका प्रभाव गुजरात की जनता में दिनो दिन बढ़ता ही गया। तत्कालीन गच्छ-नायक आचार्य गाखा के जिनचन्द्र सूर जी ने आपको ‘वाचक’ पद से अलंकृत किया। अहमदाबाद में तत्कालीन शासक रतनचन्द्र भण्डारी आपके आध्यात्मिक प्रवचनों से अतीव प्रभावित हुए। भण्डारी जी के युद्ध सङ्कट का भी आपने निवारण किया। पालीताने में मृगीरोग को उपशान्त किया। मूर्ति-पूजा विरोधियों को समझाकर जैन मन्दिर और मूर्तियों के प्रति उनको श्रद्धा गोल बनाया। आपके उपदेश से शत्रुञ्जय के कई बड़े-बड़े संव निकले। मन्दिर और मूर्तियों की प्रतिष्ठाएँ तो अनेकों स्थानों में हुई। शत्रुञ्जय तीर्थ की व्यवस्था और जीर्णोद्धार के लिए ‘पेढी’ स्थापित हुई। तपागच्छीय अनेक मुनियों को आपने शास्त्राध्ययन कराया और यशो विजय उपाध्याय के ज्ञान-सार ग्रन्थ पर संस्कृत में ज्ञानमञ्जरी टीका बनाई। आनन्दधन जी चौबीसी के अन्तिम पार्श्वनाथ और महावीर स्तवन बनाकर चौबीसी की पूर्ति की। आपने पुराने कर्म ग्रन्थों पर टवा लिखने के साथ-साथ कई नए कर्म ग्रन्थ भी बनाये।

आपने जो चौबीस तीथकरो, २० विहंगमानो और अतीत चौबीसी के तीथकरो के स्तवन चौबीस बीसी आदि के रूप में बनाये हैं, उनमें भक्ति और अध्यात्म का जैसा गुमेल हुआ है वैसा अन्य किसी भी कवि की रचना में नहीं मिलता। इसीलिए श्रीमद् आनन्द वन जी की चौबीसी के बाद देवचन्द्र जी रचित चौबीसी का ही नाम लिया जाता है एवं विशिष्ट गौरव प्राप्त है। आपकी जीवनी और रचनाओं के सम्प्रदाय में यहाँ अधिक प्रकाश डालना संभव नहीं है। स १८१२ के भाद्र बदी १५ को प्रहर रात्रि बीतने पर आपका स्वर्ग-वास अहमदाबाद डेलाका उपासरा में हुआ। आपकी चरण पादुकाएँ आज भी अहमदाबाद के हरिपुरा में स्थित जैन मंदिर के सामने के उपाश्रय के मण्डप में एक देहरी में स्थापित हैं।

श्रीमद् देवचन्द्र जी की रचनाओं का गुजरात में तो खूब प्रचार है। गुजराती भाषा में उ होने चौबीसी आदि पर तो स्वयं विवेचन लिखा है। बीभी, अध्यात्म गीता आदि अन्य रचनाओं पर अन्य विद्वानों के विवेचन प्रकाशित हो चुके हैं पर हिन्दी में आगमसार, नयचक्रसार आदि कुछ ग्रन्थ ही छपे थे। अतः आपकी रचनाओं की हिन्दी अनुवाद के माध्यम से प्रकाशित करने की योजना बनाई गई है। आपके चौबीसी और स्नात्र पूजा तो हिन्दी अनुवाद के साथ जिनदत्त सूरि सेवा सघ से प्रकाशित की गई थी। अष्ट प्रवचन माता ममवाय और पञ्च भावना सहाय हिन्दी विवेचन सहित अभय जैन ग्रन्थमाला में मैंने प्रकाशित करवा दी और अध्यात्म गीता हिन्दी विवेचन सहित जैन-मवन, बल-वत्ता से प्रकाशित हो चुकी है।

श्रीमद् देवचन्द्र जी के ग्रन्थों की खोज करते हुए कुछ अनात रचनाएँ भी प्राप्त हुई, उनमें से छोटी-छोटी रचनाओं को तो हम प्रकाशित करते रहे हैं। स १९८४ में प्रकाशित श्रीमद् देवचन्द्र भाग २

के अन्त में कलकत्ते के गुजराती जैन सभा लाइब्रेरी में प्राप्त अज्ञात अष्टरुचि सन्नाय मैंने सर्व प्रथम प्रकाशित करवाई थी । उसके बाद तो कई अज्ञात रचनाएँ प्रकाशित करवाता रहा हूँ ।

श्रीमद् देवचन्द्र जी की रचनाओं के विशेष प्रेमी मुनि श्री जयानन्द जी का बम्बई में चौमासा हुआ था तब श्री महावीर मन्दिर पायघुनी, श्री चिन्तामणि जी मन्दिर-बम्बई, खरतगच्छ सघ भुज, मांडवी और जामनगर से प्रकाशन सहायता भिजवाई थी । उसी से कीर्तिरत्नसूरि रचित नेमिनाथ महाकाव्य हिन्दी अनुवाद पंडित अभय जैन ग्रंथमाला से प्रकाशित करवा चुका हूँ । अब श्रीमद् देवचन्द्र जी के अप्राप्त अध्यात्म प्रबोध देसनासार का हिन्दी अनुवाद पूज्या सज्जन जी से करवाके प्रकाशित किया जा रहा है । साथ ही द्रव्य प्रकाश को भी पू. सज्जन जी के अनुवाद के साथ प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रकाशित किया जा रहा है । अतः मुनि श्री जयानन्द जी एवं पूज्या सज्जन श्रीजी का मैं विशेष आभारी हूँ और प्रकाशन सहायक ट्रस्टीयों भी विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं ।

हर्ष है कि इसी तरह मेरी प्रेरणा से श्रीमद् आनन्दधन जी की ग्रन्थावली जयपुर से प्रकाशित हो चुकी है और श्री चिदानन्द जी की ग्रन्थावली भी कलकत्ते से छप रही है । पाठक श्रीमद् आनन्दधनजी, देवचन्द्र जी और चिदानन्द जी इन तीनों की अध्यात्मिक रचनाओं से अवश्य लाभ उठाएँ, यही सादर अनुरोध व शुभ कामना है ।

श्री अगरचन्द्र नाहटा

जैन-अ' यात्मतत्त्ववेत्ता श्रीमद् देवचन्द्रजीगणि

रचित

द्रव्य प्रकाश

बोहा—अज अनादि अक्षय गुनी, नित्त चेतनावान ।

प्रणमू परमानन्दमय, शिव सखप भगवान ॥१॥

अथ स्याद्वाद भाय को नमस्कार-सर्वथा इकतीता

जाकै निरखन सते धिरता मुभाव धरै,

वरै निज मोक्ष पद हरै भव ताव को ।

परम को बध धारै, मोह को बिटार डारै,

सारै निज सन्ति बधार ज्ञान दाव को ॥

एकानेक रूप जानै, नित्यानित्य भाव ठानै,

आषा पर भेद करि ग्रहै स्व सुभाव को ।

अक्षर त्रिगुण इद, कमजान सौ अफद,

नमत है देवचन्द्र स्याद्वाद भाय को ॥२॥

अथ अध्यात्म महात्म्य कथनम् सर्वथा-इकतीता

अध्यात्म भाव को प्रभाव कहो कहा ताहि,

जाको महिमान ज्ञान जगत मे गायो है ।

१ P अक्षय गुणी, नित्य, प्रणमू । २ ३, ४ पद्याव A जोर B प्रति म नही है ।

याहि को सभाव लहै आपा पर भेद गहै,
 सम्यक सुभाव माहि बोधि बीज बायी है ।
 घातकी अघाती भेद, कर्म कौ मूल छेदि,
 वेद^३ निजभाव को परम भाव आयौ है ।
 ऋषभ देवाधिदेव अध्यात्म भाव सेव,
 अमल अखंड निज केवल को पायौ है ॥३॥

अथ मोह विलास कथन-सवैया इकतीसा

लह्यो ते आरिजकुल गुरु कौ सजोग बलि,
 पूरव के पुण्यबल ऐसौ जोग लह्यौ है ।
 अध्यात्म ग्रन्थसार, सुणो कान धरी प्यार,
 पीयो ताको रस निज तत्त्व शुद्ध ग्रह्यौ है ॥
 तौभी यह तैरौ जीव, चाहत विपै सदीव,
 भोग की ममत्वता सौ माचि राचि रह्यौ है ।
 जग को जीवनहार, एतो सब मोहभार,
 मोह की मरोर में जगत लहलह्यौ है ॥४॥

अथ प्रथम द्वार षट् द्रव्य के नाम सवैया इकतीसा

प्रथम जाण धर्म द्रव्य, दूसरो अधर्म द्रव्य,
 तीसरौ आकाश फुनि लोकालोक मान है ।
 चौथो काल द्रव्य एक, पुद्गल द्रव्य रूपी,
 निज निज सत्तावत अनंत अमान^५ है ॥
 पांचों है अचेतन जु, चेतना सरूप लीयै,
 छट्टो ज्ञानवान द्रव्य चेतन सुजान है ।
 स्यादवाद भाव लीयै तीनु अधिकार याकै,
 ग्रन्थ कौ आरभ कीनो ग्रन्थ ज्ञान भान^६ है ॥५॥

कवि लघुनाई सर्वथा इकतीसा

थोऊ बाल मदमति चित्तसौ करै उवति,
 नभ के प्रदेश सब गनि देवीं बरसो ।
 थोऊ जन छीन तन पुरातन बयातीत,
 बचन सौं बहै ऐसै जुद्ध करी हरिमों ॥
 भूचर धामन सौ सकति बिनु रहै ऐसी,
 लगी करि भुजा में तो मेरू चूना फरमों ।
 तैसे मैं अलप बुधि महा वृद्ध ग्रन्थ मढ्यो,
 पडित हमेंगै निज ज्ञान के गहरसों ॥६॥

ग्रन्थ अधिकारी बरुनम्-सवथा इकतीसा

परम धरम जानि, करम भरम भानि,
 नग्न नभाय लहै धाम सौं उदामी है ।
 आत्म के गिरगमी, ज्ञान के अतरजामी,
 बाधा सौं विरधि तित राधा धाम वासी है ॥
 जान गी जगत जागे, माल भय मैं न जैसी,
 अमल अगड निज ब्रह्म के बिलामी है ।
 ऐगै समवित्त धारी, पुढ नय के विचारी,
 बढत है सबद ज्ञान के प्रतापी है ॥७॥

अथ देगविरति बरुनम्-सवथा इकतीसा

अभय के त्यागी, है परम रम पापी,
 ऐसी पन्ना गिरगो, जिन धम के विलोत है ।
 जागमीक सुन सहै, ममता मुयिर गहै,
 रिपय तपाय माह रम मो चिनीन है ॥

६ P बाउ P^o मा कर, P दश कर के P कोउ P गा कह एना पुज
 करो हरि म P म, मर P A परमो P बुद्धि A ॥ वृद्धि P हृदये ।

७ P परम > परम P सहि B जावमी P विरधि > विरधि ।

परम धीरज धरि, आतमीक बल करि,
 समकित थिरकरि मिथ्यासौ अलीत है ।
 मिष्ट मित थोव भापी, सिद्ध सुख अभिलापी,
 इकवीस (२१) गुणधारी श्रावक पुनीत है ॥८॥

दोहा—साधक शिवके साधु मुनि, ताके भेद चियार ।
 जिनवर^१ आचरज^२ पवर, उपाध्याय^३ अणगार^४ ॥९॥

अर्हत की द्रव्य स्तवना-सर्वता इकतीस

जाकी देह दुति अति सोभित अनंत तेज,
 जाकी तन चतुराई नाहि थान ओर है ।
 जाही जिनराज के वचन को विलास मानो,
 शिवपुर राह शुद्ध अनुभव कोर है ॥
 जाके अतिसँ अमद, वदे देव देवी वृन्द,
 जाको ध्रम शासन परम सुख ठौर है ।
 जाही के दरस सेती, सुख को परस होत,
 ऐसो जिन देवचद विश्व सिरमौर है ॥१०॥

दोहा—द्रव्य स्तवना नाथ की, करतां पुण्य प्रकाश ।
 आतम के गुन गावता, केवलज्ञान विलास ॥११॥

८. AB अभक्ष P यागी > पागी, P लहि समतानु धीर गहि PA
 अजीत > अलीत ।

९. P^० को B ताकै B विचार > चियार P आचारिज प्रवर ।

१०. P ताही > जाही, P शिवपुरा राह P परसौहत > परस होत ।

११. A.P दवित स्तव नाना थकी, A को ।

अथ भाव स्तवनम् सर्वथा इक्षतीसा

नोनालोक भावक अनतान दृष्टि जाकी,
 वीरज अनत मु उखेरे कर्म कद जू ।
 चरण अनतपर, लोनालोक भाव वर,
 पुण्य पाप मौ व्यतीन शुद्ध सुख वृ द जू ॥
 वेद को न भेद, तीनो जोग की न खेद जहाँ,
 चेतन प्रकाश भयो कर्म सौ अफद जू ।
 ऐसे जिनराज निज ज्ञान मे विराजमान,
 अमल अखड मित ध्यावे देवचद जू ॥१२॥

आचारिज स्तवना सर्वथा इक्षतीसा

पचाचार पालै निज ब्रह्म की सभालै भालै,
 टालै पर भाव सब शुद्ध भाव भावै है ।
 परम धरम गहै, ममता सभाव बहे,
 रहे न सगग चित्त नित्त खिब लावै है ॥
 दुग्धि दया के धार, कीनौ नारी परिहार,
 परिगाह दूर छारि निरलोभी दावै है ।
 पर व्याधि दूर टारै, राग द्वेष माह वारै,
 ऐसे आचारजजी कौं देवचद ध्यावै है ॥१३॥

अथ उपाध्याय वर्णनम्-सर्वथा इक्षतीसा

नित्य सौ अनित्य रूप, एनालेव को मरूप,
 सद सद भाव स्याद्ववाद की सहाय है ।

१० P मुन > शुद्ध, P कीन > की न, २ B निषेदे जहा > न तेन जहा,
 P नित > मित ।

१३ P आषाढ स्तवना, A प्रति मे 'भावे' न हावर सब' के बाद 'पुण्य' पाठ
 है । AB यहै > वहै, परिषद् P नीर रोमी दाव है, P जिना > जी की ।

द्रव्य अभेद नय, परजाय भेद नय,

सग नैगमादि नय संख^१ भेद थाय है ॥

द्वादशांगी सूत्र सार, पढावै सपरिवार,

साधै शुद्ध कारिज जे मोख के उपाय है ।

पंच महाव्रत पालै, दोष सब ही को टालै,

पूजनीक भव्यन कौ ऐसे उपाध्याय है ॥१४॥

अथ साधु स्तुति-सर्वथा इकतीसा

आत्म राम के आरामी, निज सुख विसरांमी,

पुण्य के अकामी पाप दृष्टि सौ न काज है ।

इंद्री सुख की न आस, रहै जगसौ उदास,

परिग्रह हीन भी अजाची महाराज है ॥

मिथ्या सौ विमुख निज, ज्ञान भाव ही कै रख,

मोख सनमुख सिद्ध सुख के समाज है ।

करम उदिक सेती करत है क्रिया कर्म,

सत्तावीस(२७) गुण धारी ऐसै मुनिराज है ॥१५॥

दोहा—अविरत आदि अजोग लगि, यहै बन्ध को हेत ।

जो गुण जहां पूरण हुवै, सोई सिद्ध कौ खेत ॥१६॥

अथ मिथ्यादृष्टि हेय फथनन्-सर्वथा इकतीसा

आपकौ न जानै परभाव ही कौ आप मानै,

गहिकै एकात पक्ष माच्यौ है गहल^१ मै ।

१४. P सो, P कोशरूप > को सरूप P नै असंख भेद पाय है, P पठावै
P कारिज, P मोक्ष P पूजनीक भव्य जीको A^० भव्य जीव कौ >
पूजनीकी भव्यन कौ ।

१५. P आत्माराम, P वीसरामी AB सो > सौ A परिगाह B परिगह
P अजाचि P मोक्ष B समाजु AB उदीक P ऐसे क नित ।

१६. P लगी यहै ।

भरम में पर्यो रहै पुय कम ही को चहै,
 वह अहदुद्धि भाव थम ज्यु महज में ॥
 पुगति सों डरै सद्गति ही की इच्छा करै,
 करनी में फिर ह्वै कै चाहै मोख दिल मै ।
 स्यादवाद भाव विनु ऐसी जो मिथ्यात भाव,
 हेय रूपी बह्यो ज्ञान भाव के अदल^१ में ॥१७॥

अथ प्रचारभ को नमस्कार

बोहा—उही भाव स्यादवाद को, जामै अथ विलास ।
 समवित्त वारण ग्रथ यह, नामै 'द्रव्य प्रकास' ॥१८॥
 शिष्य प्रश्न

बोहा—ज्ञान रूप आदेय जो, जानौं चेतन सोय ।
 जे अजीव फुनि हेय है, उन जानै क्या होय ॥१९॥

अथ गुरु उत्तर कथनम्-सर्धया तेवीसा

चेतन द्रव्य अनंत गुणाश्रित, ध्येय आदेय स्वभाव धरै है ।
 आप विसारि वसै भव कीच मै, आप लखै शिव भाव चरै है ॥
 इतै यह जीव पराई युसगति, चंचल भाव लीयै विचरै है ।
 शिष्य संदह निवारण कारण, त्याग स्वरूप बचान करै है ॥२०॥

बोहा—त्याग परकी जानि कै, गहै आपनौ जानि ।
 यात दोनु भाव को, पडित वर वखान ॥२१॥

१७ P को > कौं, के, माच्यो हे चहै, बहे झरु > ह्वै क, मो १, मिथ्यात्व ।

१८ P छनो, को जामे वारण > धारण ।

१९ जान ।

२० P धरे, A वरै > चर P लखे B युसगते P निवारण वारन B फारन ।

२१ P त्याग, या, वर, PB जान, P पाते, P को, बदे ।

भेद ज्ञान वरणनम्

दोहा—भेद ज्ञान शिव माग है, ज्ञान गेय इहि मांहि ।
ध्यान ध्येय की गुद्धता, भेद ज्ञान विनु नांहि ॥२२॥

भेद ज्ञान मूल उच्य नय वरणन-मवैया इकतीसा

शुद्ध नय निहचै जथारथ सरूपी सत्य,
व्यवहार किया नय तातै दिपरीत है ।
भेद ज्ञान कारन न होइ विवहार नय,
ज्ञान के निहारये वाको त्यागवो ही नीत है ॥
वस्तु को पिछानै निज गुद्धि कौ विगुद्ध ठानै,
गुद्ध नय सरूप ऐसी सम्यक कौ मीत है ।
रतन त्रितय को सामी देव को अंतरयामी,
ऐसै गुद्ध नय सी हमारी थिर प्रीत है ॥२३॥
पुन चंद्रायणा

वाह्य लिंग यह नय विवहारा,
तत्त्वहीन किरिया आधारा ॥
गहण जोग नय गुद्ध कहत विवेक मैं,
त्याग योग विवहार ज्ञान की टेक मैं ॥२४॥

शुद्ध नय नहिमा

दोहा—पर विमुक्त यह आतमा, चिन्मय चंद समान ।
आदि मध्य नहि अत तसु, द्योतक निहचै जानि ॥२५॥

२२. P शिवमा गहे, P नाही । २३. P सुव B यथारथ AB व्यवहार,
P निहास्यै याको, त्याग वैही, P गने B वानै > ठानै, P नै > नय,
B त्रिय > त्रितय AB अतरयामी P एसो > ऐसै ।

२४. P वाज > वाह्य AB कहैत, P टेकमे ।

२५. P निहचै जान ।

शिव्य प्रश्न दोहा

बाल्यो ह्य व्यवहार नय, ज्ञान होत पर गेट ।
तो बहु कैसे वरणयो, जिन जामन मैं एट ॥२६॥

अथ गुरु उत्तर कथनम्

सोरठा—जाणण ज्ञानम तत्त, निदचं नय विजहार है ।
तीय प्रवृत्ति निमित्त, तिण दो नय जिनवर बह्या ॥२७॥

भेद ज्ञान महात्म्य कथन सर्वेया इक्षतीसा

जेते चेई भव्य जीव लोन ज्ञान मैं मनीव,
करम की जग को उपारे एक पता मैं ।
जाकी मून हेत एव भेद-ज्ञान ही की टव,
छेन नै विवेक की विचारं जेउ दिन मैं ॥
बध ते बिलास मैं मगन जउ आली जाम,
परे तम जग माहि रने जा ज्ञान मैं ।
ते तो भेद-ज्ञान विनु निहने शिखायो देव,
करम की गाढ यादें ज्ञान की चाल मैं ॥२८॥

अथ ज्ञान विनास कथन-सर्वेया इक्षतीसा

जापा पर भेद नीत जातमा स्वज्ञान पीत,
करम रें पुछ की त जानै निज देग मैं ।
घसी निज गुन याति भाम आप रूप राशि,
त्रिराजै असउ रूप ज्ञानम प्रदेश मैं ।
आदि ज्ञान के ब्रह्म सी गड्यो है ग्याग,
ज्ञान जणे दधि रह्यो घटा के प्रयोग म ।

२६ B तो बाली कमें वरणयो ।

२७ B तज्य, AB निमित्त ।

२८ P तदेव, तावत् ॥२७॥ त्रि P विनाश साधु नीत य, स्व प्राप्ति ।

तैसे ए पुराण देव तत्त्व को पिछानै नाहि,
करम की करतार भयो परदेश मँ ॥२६॥

आतमा अकर्ता कथनम्—सर्वथा इकतीसा

सहज सुभाव अथ गुरु कै वचन सेती,
जान्यौ निज तत्त्व तव जाग्यो जीव राय है ।
मैं तो परद्रव्य नाहि परद्रव्य मेरो नाहि,
ऐसी बुद्धि भासी तव बंध कैसे थाय है ।
देखि जानि गहो तुम परम अनंत पद,
जाकै पद आगै और पद न सुहाय है ।
प्रमाण निखेप नय जाकै तेज आगै अस्त,
ऐसो निज देव शुद्ध मोक्ष को उपाय है ॥३०॥

अथ आतमा मुक्ति रूप वर्णनम्

दोहा—बधोदय दीरण प्रमुख, ए सब पुद्गल युक्त ।
इनसौ पर निज तेजमय, मैं हौं कर्म विमुक्त ॥३१॥

आत्मा थिर भाव कथनम्—सर्वथा इकतीसा

पवन कै थभ सो सुभाव थिर रहै जल,
तैसे ज्ञाता जीव होइ करम वियोग सौ ।
जेते ज्ञान नाथ के लगै परभाव साथ,
ताते पर जानि दूर करै ज्ञान योग सौ ॥
स्वयभू चेतन रूप, अमल अनंत भूप,
ताकौ थिर ध्यान घर त्याग नातो लोग सौ ।
आश्रव विनाश होते सवर सरूप भयो,
ताको बांध राखै कीन करम अभोग सौ ॥३२॥

२६ P वसि > वसै, AB राशि > वासि, P बढावसि गड्यो हे घढा के प्रवेश मे,
AB प्रदेश > परदेश । ३०. P स्वभाव, P नाही, भानि, जानी, A सुहात
P निखेप, शुद्ध मोक्ष । ३१. P इनसो, मैंहु कर्म । ३२. P थोर, तेसो ।

दोहा—उरणादिक परभाव ए, है सत्र तन के अग ।

नव नव रग गहै फिटक, पुढ उपाधि के सग ॥३३॥

अथ आत्मा फटिक दृष्टान्त कथनम्—सर्वथा इकतीसा

जैसे मणि फटिक सभाय निरमल रूप,

तसे थिर चेतन सदाइ निरमल ह ।

तो भी राग दोष मोह अग्यानी उपाधि सेतो,

वस्यो है समार मे अज्ञान सों विकल^१ है ॥

तो भी तर्ज नाहि कब अपना स्वभाव द्रव्य,

भूपन कहावे बहु वचन सफल है ।

तम पक्ष राहु सग चन्द्र राहु योग भयो,

चन्द्र बहा तम होय नित्य जो विमल है ॥३४॥

सत्तारी आत्मा कथन—कवित्त छप्पय छव

पर परनति निज मानि, शुद्ध परनति पर जार ।

रागादिक सयोग, आत्म परभावहि ठाने ॥

रागी रापी अह, एहु विानप मल मिलीयो ।

उरे परम को वध, फिरे जग मे हलफनीयो ॥

जिम भूत छाय जुत पुरष निज, भूत भाय कोइव कहै ।

त्यो जीव एह अज्ञान वशि, त्रिविध तम बचन राह ॥३५॥

दोहा—चेतन परने जोग गा, परकी परता होय ।

पातै परकी पर लख, तर्ज अकरन मोय ॥३६॥

निज उपादेय पर हेय कथनम्

दोहा—चेतन विनु जेते दरअ, ते अशुद्ध पर हेय ।

शुद्ध चेता राजुगत, नित्य जीव आदय ॥३७॥

पच द्रव्य जड हेय है, तीभी कहीउ जेय ।

तातै वाखानी प्रगट, स्यादवाद नय लेय ॥३८॥

अथ द्रव्य लक्षण

दोहा—उपजै विनसै थिर रहै, यह सद् लक्षण जानि ।

सत लक्षण कुञ्जौ धरै, सोड द्रव्य परवान ॥३९॥

द्रव्य चतुष्टय स्वरूप—सर्वथा इकतीसा

धरम अधरम द्रव्य नभ कान च्यारी द्रव्य,

अरूपी अखंड जड भाव लीये वरतै ।

तामै तीन अस्तिकाय कान विनु जिन कहें,

गहै गनधार तीन पद अनुमरतै ॥

च्यारौ निज गुनवान लछन निधान नित,

निज निज काज सासै मिलै कौन परतै ।

च्यारौ सी वियुक्त नित अलिपत नभवत,

जीव तत्त सिद्ध होय भी समुद् तरतै ॥४०॥

कालद्रव्य विनु तीन द्रव्य, सर्वथा इकतीसा

धरम अधरम नभ तीनों को इकैक खध,

अकिरीय निरतर जैन मै बखानै है ।

धरम अधर्म दोनु असख प्रदेशवत,

लोक असमान मान अचल कहाने है ॥

नभ अंस है अनत लोकालोक मानवत,

गुण परजाय मत अकृत पिछानै है ।

एतो उन सम तो भी ग्यान विनु ध्येय नाहि,

ध्येय एक जीव जो तो लोकालोक जानै है ॥४१॥

अथ धर्म द्रव्य लक्षण

दोहा—जो तौ पुद्गल जीव को, चलण सहाई होय ।

आप अचल अक्रीय नित, धर्म द्रव्य है सोय ॥४२॥

अथ शिष्य प्रश्न

दोहा—शिष्य कहे सद्गुरु सुनो, यह हम मन में भ्रम ।

जग मे पुद्गल जीव कौ, कैसे प्रेरें धम ॥४३॥

गुरु उत्तर कथनम्

दोहा—जैसे जलचर जीव वी, चलन सहाई नीर ।

तैसे पुद्गल जीव कौ, चलन सहाइ वीर ॥४४॥

अथ अधर्म लक्षण

दोहा—अधर्म द्रव्य जो यिग करै, जोड़ पुद्गल कौ साहि ।

मध्य दीह ग्रीपम समै, ज्यु पसी तह छाहि ॥४५॥

आकाश द्रव्य लक्षण

दोहा—जो देव अवगाहना, सो आकाश कहैवाय ।

गुण परजय जुत जासमै, पाची द्रव्य समाय ॥४६॥

अथ सामा य अष्ट गुण धरमादि त्रय कथन

कवित्त—छप्पम

पहिली अस्ति-समान, वस्तु-सभावता वीय गिन ।

तीजो द्रव्य सस्य, गुन चतुस परमेय पुनि ॥

पचम अगुरुलघुत्व, छटो सप्रदेश कहीज ।

सत्तम चैननहीन, आठमो अरूप लहीज ॥

ए आठ द्रव्य कै जाति गुण, वदा काल ना बिभचरै ।

धरमादि द्रव्य त्रय नित्य ए आठौं गुन नितप्रति धरै ॥४७॥

सवया इफतीसा

गति हेतु कह्यौ धम, यिर हेतु है अधम,

अवगाह दन तो आकाश ही वी गुन है ।

तीनी ए विशेष गुन, कहै तीनों द्रव्य ही के,
 अब गुन तीन विधि कहिँ को मन है ॥
 द्रव्य कौ विशेष गुन, यहै असाधारन है,
 साधारन गुन गत पद की कहन है ।
 अचेतन रूप विनु, तदुभय गुन कही,
 गुन परजाय द्रव्य ज्ञान यी गहन है ॥४८॥
 द्रव्य पर्याय कथन-सर्वथा इकतीसा
 गुण के विकार परजाय कह्यँ जिनराज,
 स्वभाव विभाव रूप ताके दोय भेद है ।
 शुद्ध परजाय तौ अगुरुलघु के विकार,
 हानि वृद्धि रूप जाने वारह विभेद है ॥
 अनन्त असह्य सख्य भाग हानि गुण हानि,
 ए तौ छहो हानि छहों वृद्धि युं अवेद है ।
 एतौ परजाय छहो द्रव्य की समान भाखै,
 और परजाय गुन सुनन उमेद है ॥४९॥
 विभाव पर्याय कथनम्
 दोहा—खद्य थान गत भेद ले, कहनी वचन विलास ।
 परपर्यय धर्मादि कै, ज्युं घट मठ आकास ॥५०॥
 आकाश द्विध कथनम्
 दोहा—सो आकास द्वै विध भयी, यद्यपि है इक खद्य ।
 लोक अलोकनि कै सबै, कहौ लखन सनमद्य ॥५१॥
 ध्रुव उतपादन अत जुत, जहाँ एक आकाश ।
 सादि अनन्त अपार जड, सो अलोक परगास ॥५२॥
 जामै गुण पर्यायजुत, छहौ द्रव्य कौ वास ।
 आप असख प्रदेशधर, सो है लोकाकाश ॥५३॥

५६. P उरि > और

५१ p लोक अलोकनीके सबे कहौ लक्षण सबध । ५२ p परकास

अथ शिष्य प्रश्न-सर्वेषां इक्षतीता

धर्म लोकायास मान अधर्म ताने मान,
 असंग प्रदेशो एक जीव यु अनन्त है ।
 लानापोर नभ मम गुद्गल अणु मुद्गम,
 वात ये द्रव्य गर्म धरता अनन्त है ॥
 आधार लानायास सो प्रदश स असंग राशि,
 वात धान तुच्छ अरु आधेय महत्त है ।
 तातैं वैसें ए समाय, वही सामो रो उपाय,
 द्रव्य रोनि थिति की तो हम मा भ्रात^१ है ॥१४॥

॥ अथ गुरु उत्तर पथनम्-सर्वेषां इक्षतीता ॥

जने एक जन ठाठ तदगित जन भृत,
 तामें तदुचित मग्वरा गलि जाय है ।
 साम लूण वार राना गारि दार दार दार,
 तामें तूई की मगूह रोभी ठहराय है ॥
 जने एक ठाठ माहि, पाचो वस्तु ठहराहि,
 जलादिन तहसीव प्रगट दिसाय है ।
 तैसे लोकाकास माहि, पाचो द्रव्य माय जाहि,
 अपगाह गुन की सकनि बह्याय है ॥१५॥

॥ अथमती प्रश्नोत्तर कथन-सर्वेषां इक्षतीता ॥

अथमति पक्ष गहे बहै यही बात सब,
 धरम अधम द्रव्य जग माहि माहि है ।
 पण्तिग्य दीर्म नाहि, अनुमान ज्ञान नाहि,
 उपमान शब्द माहि एतो न कहाही है ॥
 तात जैन बहै वैं अनुमान सैं कै मथा,
 इद्रो अग्रहीत भाव जग माही होरी है ।

१४ p द्रव्य बाल व गुद्गम p भ्राता > भ्रात ।

१५ वार > दार, सोम मगरि > मगति ।

गति हेत सोऊ हेत दधि गुन घृत वत,
तैसे ए अरूपी नित्य द्रव्य जग माही है ॥१६॥

पुनः अन्यमती प्रश्नोत्तर सवैया इकतीसा
कालवादी की उक्ति गति थिति रीत डत,
काल कै अचीन दीन हीन मत पीन है ।
बुद्ध कहै काल गुन नव पुरातन पन,
दोय क्रिया एक द्रव्य कवहुं न कीन है ॥
पचभूत वादी कहै गति वाउ भूत छति,
थिति रीत समसत पृथवि आधीन है ।
बुद्ध कहै वायु भूमि जीव पुद्गल दल,
वाकाँ बल और याकी बल तो नवीन है ॥१७॥
दोहा—याते पुद्गल जीव कौ, गति थिति हेत सदीव ।
धर्म अधर्म दो द्रव्य जड़, इनकाँ जाता जीव ॥१८॥

काव्य द्रव्य लक्षण

दोहा—वर्तन परिणति जानु नित, क्रिया परा परवान ।
नव जीरण को हेतु जो, काल द्रव्य सो जान ॥१९॥
काल द्रव्य गुण पर्याय कथनम् सवैया—इकतीसा
अस्ति आदि अष्ट गुन युत अप्रदेणी नित,
समै को मिलन विनु नाहि अस्तिकाय है ।
वरतना हेतु ए विशेष गुन कहै जिन,
अगुरुलघुत्व भेद जाकै परजाय है ॥
आवली^१ प्रमुख पर परजाय है अनत,
उतपाद व्यय ध्रुवमन्त कहिवाय है ।
सो तो द्रव्य एक कहै समय अनंतवन्त,
नरखेत मित वरतना को उपाय है ॥२०॥

॥ शिष्य प्रश्न ॥

चोपाई—शिष्य कहै तुम काल ' परवाना,
मनुज 'खेत मित कह्यो मुजाना ।
उतपादादिक सत्र जग माही,
समै समै मे क्यु कहिवाही ॥६१॥

अथ गुरु उत्तर 'कथनम्—सवया इकतीसा

तब आचारिज एक गहै निजमत टेक,
कहै ऐसो बात परवान पक्ष गहिकै ।
नर खेत समै मित काल माहि तीनों होहि,
छहो द्रव्य माहि नित देखै ज्ञान लहिकै ॥
ताते उपदेश माहि कहै निज वैन ऐसे,
गहै गनधार सरधान शुद्ध वहि कै ।
देख्यो यु अनत जिन देखेंगे अनत फुनि,
देखत है भी अनत ज्ञान सरदहिकै ॥ ६२ ॥

अथ अष्ट आचारिज वचनम्—सवया इकतीसा

बहै आर गुरु काल द्रव्य है असख थिर,
रणुत ए लोक परदेस परवान है ।
एक एक रेणुव मैं अनत प्रगन होत,
समय सरव समै काज परधान है ॥
निज निज काज करै अनमिल पनै मदा,
याते अम्बिकाय की कदापि न कहान है ।
अनत अनीतवान ते तो अनागत भाव,
अप्रदेशी परिणामी काल द्रव्य मान है ॥ ६३ ॥

६२ P गहि > गहै । होहि > होहि । नही के > सहि क । ६३ P असख्य ।
गान > भाग ।

अथ निहर्च काल स्वरूप कथनम्

दोहा—मनुज खेत मित जो कह्यो, नो व्यवहारो काल ।

निहर्च पाँचो द्रव्य की, काल वर्तना चालि ॥ ६४ ॥

काल द्रव्य उपचार है, पच अस्ति की चाल ।

और कथन सब शास्त्र के, सो उपचारी भाल ॥ ६५ ॥

अथ हेय उपादेय विवेचनम्—सर्वया इकतीसा

उत्तपाद व्यय ध्रुवपन जीव सम ए भी,

अगुरुलघुत्व पर्याय भी समान है ।

अरूपी अखंड अज अनादि अनंत संत,

अनमिल और सेती लोक कै परवान है ॥

इत्यादिक गुण सो समान तो भी ए अजान,

तार्त ध्यान ध्येय नाहि ध्येय जानवान है ।

अनंत त्रिगुण साथ 'देवचद' गुणनाथ,

ध्येय उपादेय ब्रह्मज्ञान का निधान है ॥ ६६ ॥

॥ इति द्रव्यप्रकाश को प्रथम अधिकार समाप्तम् ॥

द्वितीय-अधिकार

दोहा—वरन च्यारी द्रव्य पर, जेह अरूप अजान ।

अव वरनी सछेपसो, रूपी जड परमानु ॥ १ ॥

अथ आत्मा करम योग कौ हृष्टांत—सर्वया इकतीसा

जैसै नीरनिधि नीर समीर की भीर सेती,

उछरै उत्ताग अति चंचलता विलसै ।

डोलत नदी को नाथ चपल कल्लोल साथ,

रंच न सुथिर होइ आकुलता मिलसै ॥

६४. P वृत्तना । ६५. P चाली. भालि । ६६. P ०व परजाय, प्रवान <

परवान । १. P सक्षेप, परमान

तमै ए चेतन भूप अमल अटोल रूप,

अखड अनत ज्ञान शुद्ध रस में वसे ।

सोई जीव कम प्रेरघो मोह के पन्न घेरघो,

फेरघो फिरै ममता सी क्षोभ भाव का धरै ॥ २ ॥

पुन दृष्टांत

जैसे माटी जल सग घट दीपकादि चग,

नव नव भाव धरै मृद रूप वोड है ।

तैमै कम जल जोग जीव च्यार गति रोग,

लहै पै अखड ध्रुव चेतनत्व सोइ है ॥

ऐसो निज गुनवत अमल अखड सत,

ताहीको सरूप गहै सिद्ध रूप जोड है ।

कहै 'देवचंद' वदि ऐसै चिदानंद विनु,

मोख को साधक भइया और नही कोइ है ॥ ३ ॥

पुद्गल द्रव्य लक्षण

बोहा—पूरन गलन सभाव धर, अम्तिकाय मूर्त्तिक ।

फरम वण रस गंध मय, पुद्गल द्रव्य सुठीक ॥ ४ ॥

अथ पुद्गल गुण पर्याय कथनम्—सयया इकतीसा

जाके मूल गुन गनि रूपी अचेतन भनि,

अम्तिपन आदि पट आठ ओष गुन है ।

पूरन गलन रूपी अणु को विशेष गुन,

यहै अरु धारन के उर माहि जैन है ॥

हानि वृद्धि पट विध मूल परजाय जाक,

द्वयणुक प्रमुख खय परजाय आन है ।

एक वरण एग गंध एक रस द्वै फरम,

पाचौ गुन याके मूल परियाय जान है ॥ ५ ॥

२ P क्रोध सी > की घमै । मोय । ५ P असाधारन < अर धारन । A ओर
> उर । याके दणुक । AB परम यजन है । P आने है, परीयय जाने है ।

पुद्गल द्रव्य सङ्घ

बोहा—अन्य खंघ सी मिलन की, यामे सकति सदाय ।
 याते परनामी प्रगट, अस्तिकाय कहिवाय ॥६॥
 पुद्गल द्रव्य अनंत है, सब नभ अस समान ।
 ताके खंघ अनंत है, नरद^१ पास रांठान ॥७॥
 सो पुद्गल है दोय विध, इक अणु दूजो वंघ ।
 खंघ दुविध एक जीव विनु, वीय कर्म को वंघ ॥८॥

पुद्गल खंघ रवहप—सदेया इकतीसा

छुटे अनु है अनंत ते भी खंघ मे मिलत,
 अनु के सकंघ होय खंघ अनु होय है ।
 जेते अणु है अनंत तेते खंघ होय नांहि,
 ऐसी बात कहै सोतो मूरख अबोह है ॥
 तासो कहै द्रव्य पुद्गल परावर्त्त काल,
 मिलै कंसी भांति जाकी पुद्गल सोह है ।
 अणु गति जीव सम यिति है अमित नित,
 कही अनु बात अब खंघ को प्रबोह है ॥९॥

पुद्गल पर्याप्त कथन

बोहा—छाया आतप तेज तम, सचद वंघ लघु धूल ।
 विद्युरन मिलन प्रवाह गति, इनकी पुद्गल मूल ॥१०॥
 केइ इद्रीगम्य है, कै अगम्य निरधार ।
 सख असख अनंत अनु, त्रिधा खंघ विरतार ॥११॥
 ज्ञानहीन जड़ हेय सब, उपादेय जीउ सार ।
 अब बरनौ निज ज्ञान हित, कर्म वंघ विस्तार ॥१२॥

६. P कहेवाय । ६. P तासै > तासी । यिति है अमीत > यिति है अमित ।

११. P केइ > के ।

अथ कम हेतु कथा—सर्वथा इष्टीता

पञ्च मिथ्या तौ प्रपञ्च अतिरिक्ति वार सच,

पञ्चवीस मपराय योग पञ्चदश है ।

एते गगवन्न हेतु तमवध ही हैं गेत,

साके भेद चौ प्रवृत्ति चिति रस देग है ॥

प्रवृत्ति सभाय चिति पाल ठहराव ग,

चिक्कणाई दज समुदाय परदेग है ।

परं निज निज पाज भाव कम के समाज,

मोन्व चौ दृष्टात च्यारे मे अस्य है ॥१३॥

कर्म अष्ट प्रकार कथन—सर्वथा इष्टनीता

प्रथम ज्ञातावरणीय ज्ञान तौ (अ) छाद मेय,

आर पर पट जैत माफी नव दाव है ।

भेद मति आदि पञ्च पाषी निज गुण वचै,

क्षायण क्षयापणम यामं दोष भाव है ॥

दरगन उद्देदा दग्गनाउग्नीय,

प्रनीतार मम ध्रुव बधी ठहराव है ।

दग्गापरण च्यार नौ पांच प्रवार,

यामं दोष भाव मोट दृष्टि चौ उपाय है ॥१४॥

चेदनी परम धा अद्यादाध रम हर,

साके नौ भेद नव माता नौ अमात है ।

अगाता तौ पाण हेतु माता हेतु पुण ही,

मधु गग गुन अगिपारा मो पटा है ॥

मादही के नौ दोष दग्ग रग्ग जाय,

ज्ञान के मीत भेद जग म कहात है ।

मिथ्या मोट मिथ मोट मयजि-मगा मार,

तोतोद प्रवृत्ति निज गुण परं पात है ॥१५॥

मिथ्या मत वरणन—सर्वथा तेवोसा

देह नी प्रीत प्रतीत अनीत सी,
 पुण्य की रीत मां जाकी मिताई ।
 जीव अजीव विवेक की टेक न,
 जानत ना कछु आप पराई ॥
 करै बहिरंग दयादि क्रिया फुनि,
 अन्तर* जान भगति न पाई ।
 'चद' कहै जिनचद कृपा बगि,
 ऐसी मिथ्यामति जाइ पुनाई ॥१६॥

मिश्र दृष्टि वरणन

दोहा—वीतराग कै वचन पै, नांहि राग ना द्वेष ।
 फल भक्षी नर अन्न जुं, मिश्र मोह से लेख ॥१७॥

सम्यक् दृष्टि लक्षण—सर्वथा इकतीसा

जाकी तन प्रीत नांहि साता पर भीति नांहि,
 जान रीति लीयो निज नीत मांहि बसे है ।
 निसक्तादि अष्ट सिष्ट इष्ट निज गुण निष्ट,
 अतरंग बहिरंग संत रस लसै है ॥
 इद्री मुख सुं विमुख सिद्ध मुख सनमुख,
 निज जान रख सी कलुप भाव नसै है ।
 वरनै धरम राग देवादिक पै सराग,
 याते समकित मोह राग संग हसै है ॥१८॥

समकित मिथ्या लक्षणम्

दोहा—मिथ्या मोह अशुद्ध दल, शुद्ध सो समकित नाम ।
 श्रद्धा सुचि रुचि तोहि सहि, अतीचार परनाम ॥१९॥

चग्नि मोहनी के भेद

घोषार्द्ध—चरन मोह के द्वै परकारा,
 नहा कपाय का बहु मिस्तार ।
 तो कपाय की नव विध धारा,
 अब वरनों लखन परचारा ॥२०॥

आमु कर्म भेद

घोहा—भय विपावि भल जेल भय, अनवगाह को छेद ।
 नर नारय त्रियण् अमर, आज वर्म चौभेद ॥२१॥

नाम कर्म भेद

घोहा—नाम कम के भेद घट्ट, वरनत बटे गरय ।
 ताते वरनों नाम वल्लु, जासी कल्लु अरय ॥२२॥

सवया इकतीस

ऐसठि ११ प्रवृत्ति पिड, अठावीम^{१०} है आपड,
 मय मित्या नाम भेद तिरानु बहान है ।
 तन पच दध माहि, पाष पी गहन कीज,
 वरनादि बीम माहि ज्यारीइ गहन है ॥
 तय मडमठि^{१२} भेद, नय बध माहि गहे,
 उदय उदीरना म इट्टे को मान ह ।
 राता के गरुप माहि प्रानव^{१३} को है उद्यादि,
 देयचद वम्ममुक्त मदा मुय धान है ॥२३॥
 अय गोय कम भेद

घोहा—ऊँल गोच दो भेद का, गोय वम्म जड मानि ।
 गूँद निज गुन अगुल्लघु, गुम्मवार मय जानि ॥२४॥

१० B चारत > चरन AB प्रचारा > परचारा ।

११ P त्रियण । १२ B वल्लन । १३ P बहान । १४ P जान > जानि ।

अन्तराय कैंपांच भेद

दोहा— दाम^१ लाभ^२ वल^३ भोग^४ कौ, वलि उपभोग^५ प्रकार ।

इन पाचौ को मूँद लै, अंतराय सो धार ॥२५॥

अष्ट कर्म उत्कृष्ट थिति कथन

दोहा—जान दंसनावरण अरु, वेदनीय अतराय ।

इनकी कोड़ाकोड़ि थिति, सागर तीस ब्रह्माय ॥२६॥

सित्तरि कोड़ाकोड़ि थिति, मोहनीय के दीस ।

सागर कोड़ाकोड़ि थिति, नाम गोत के बीस ॥२७॥

अष्ट कर्म जघन्य स्थिति

दोहा—पञ्च कर्म की जघन्य थिति, एक महूरत होय ।

परम देव अरु नरक की, सागर तेतीस जोय ॥२८॥

अथ रस बन्ध कथनम्

दोहा—सर्वघाति उत्कृष्ट रस, देम घानि को मव्य ।

गुन अघाति कौ हीन रस, आगम माहि-प्रसिद्ध ॥२९॥

वरण गध अरु फरस तै, रस अनंत गुन होय ।

कर्म माहि रस अनंत विनु, कर्म न बँधे कोय ॥३०॥

अथ प्रदेश बन्ध अष्ट वर्गना कथन—सर्वथा इकतीसा

उदारिक वैक्रिय आहारक तेजस औ,

भासा नासोस्वास मन कारमण अन्त है ।

एकाणुक आदि ले अभव्य जीव सौ अनत,

ऊदारिक अगहन गहन अनत है ॥

वैकरिय अगहन ताही सौ अनन्त तासी,

वैकरिय गहन वरगना अनन्त है ।

आठौइ अनन्त पुद्गल दल बृद्ध मंत,

इन सौ विमुक्त देवचंद महासंत है ॥३१॥

अथ कर्मदल विभजन यथा-सर्वथा इक्षतीसा

परपो मोह कम पास बंध आठ कम फाग,
 तब सब थोरे अणु आठ के पखानीयै ।
 तातै नाम गोत बम्म अणु हे अधिक तातै,
 ज्ञान दसनावरा अन्तराय ठानीयै ॥
 ताही ते अधिक मोह कम परमाणु होय,
 ताहि त अधिक वेदनीय के पिछानीयै ।
 मातै तुड-अणुद न वेदनी प्रगट माहि,
 मरम निरस हय भोजन ज्यु जानीयै ॥३२॥
 बोहा सब घाति परमाणु अति, देश घातकी हीन ।
 विगजै यध सम तुरत, दक्ति जीव की पीन ॥३३॥
 - जीव महिमा कथन
 बोहा—इत्यादिव बहु कम दल, इनमै लपटयो जीव ।
 ताहै विविध विध बघरौ, तो भी मुक्त मदीव ॥३४॥

आत्म महिमा-सर्वथा इक्षतीसा

पुद्गल है प्रगट चेतन है गुप्त रूप,
 अणु मूर्त्तिवि ठीक जीव मरती न है ।
 पुद्गल है अजान जीव लोकांलोक जान,
 भ्यानादिक गुणान थिरता मे पीन है ॥
 चिरकाल कम मग रहो तो भी कम मुक्त,
 विषहार पक्ष गहै कम के अकीन है ।
 अक्षर त्रिगुण इद दबचद ज्ञान वृद्ध,
 अक्षर सभाव लीयै अक्षय रस पीन है ॥३५॥

॥ इति ब्रह्म प्रकाश की द्वितीय द्वार सम्पूर्णम् ॥

तृतीय जीव द्वार

दोहा—वरण्यो पुद्गल द्रव्य को, सक्षेपे अधिकार ।
अव वरनी सद्येप सौ, जीव द्वार मुविचार ॥१॥

जीव लक्षण

दोहा—तिहु काल जयवत जो, चेतनता गुन खानि ।
लिपै न परके लेप सौं, सोऊ जीव वखानि ॥२॥

जीव स्वभाव कथन—सवैया इकतीसा

करम को करता न भोगता न करम को,
आतम धरमवंत परम अफंद है ।
अमंख प्रदेश धर चेतना रमणिवर,
अस्ति आदि पट परकार गुन कंद है ॥
परभाव भावित पै सदाई अपरभाव,
निज परभाव भव भीति सुं अमंद है ।
अनत प्रमोदवत संत सत्तावंत सत,
अक्षर त्रिगुण इंद मदा देवचन्द है ॥३॥

जीव द्रव्य के चार पर्याय कथन—सवैया इकतीसा

मूल परजाय है अगुरुलघु को विकार,
पट हानि वृद्धि रूप द्रव्य को सरूप है ।
पर परजाय नर नारकादि अवधार,
मति आदि परजाय व्यञ्जन अनूप है ॥
स्वभाव द्रव्य व्यञ्जन ए परजै चरम तनु,
तातै न्यून सिद्ध अवगाहना अरूप है ।
अनत चतुष्क गुण व्यजन के परजाय,
निज काज करतार निज गुण भूप है ॥४॥

एक द्रव्य एक क्रिया करे यह कथन

घोपाई—दाय द्रव्य एक किरिया न करे,

दो किरिया एक द्रव्य भी न धरे ।

एक वस्तु एक किरिया ठाने,

यह यथाथ जिनराज बगाने ॥५॥

शिष्य प्रश्न—सर्वथा इकतीसा

निहच अशुद्ध नय व्याप रागादिक चय,

ताही कौ व्यापक होय कम सो करनु है ।

सोई व्यवहार सहि वेदक सभाव गहि,

गत समय कृत क्रिया फल को गहतु है ॥

कृत कम भोगता है नूतन को करता है,

एक समय एक जीव क्रिया दो धरतु है ।

हमका मदह एह कहो गुरु गुन गेह,

तुहारे मित्रात कीचि कसो अभिमनु है ॥६॥

अथ गुरु उत्तर कथन—सर्वथा तेवीसा

शुद्धपन अपन गुन कौ, करता यह जीव नयारथ एही ।

ज्ञान सरूप अनूप सध, गुण राशि वर्ध गत रोप अनेही ॥

भात्रत कम्म करे पर योग, विभाव सयोग अज्ञान को गेही ।

ताही त द्रव्यत कम उपाधि, लग जीउको किरिया द्वय केही ॥७॥

दोहा—चिद्रूपक रागादि पर, कोनै ताके रोध ।

द्रव्य कर्म को राध कं, ताते निमन बोध ॥८॥

सर्वथा इकतीसा

ज्ञान रूप ज्ञान माहि क्रोध भाव क्रोध माहि,

ज्ञान क्रोध एकता न होय कहूँ थान में ।

नांहि कर्म हेतु खेद मार्गना को भयो छेद,
 ध्यान ध्याता भेद न न वचन तरंग है ॥
 शांत ध्रुव निरुपाधि छीन पर क्रिया व्याधि,
 पर द्रव्य न असेस लेस न अनंग है ।
 ज्ञान ज्योति भासमान रतन त्रितय काँ जान,
 ऐसी शुद्ध नित्य देव मेरे घट सग है ॥१७॥

भेद ज्ञान महिमा कथन—सर्वथा इकतीसा

ऐसै कोऊ जैन नर भेद-ज्ञान भाव धरि,
 जीव कर्म भेद कीनी हंस क्षीर नीर ज्यौ ।
 मोह को विनाश कीनो आत्म गुन गह लीनो,
 भीनो शुद्ध धरा माहि जैसे जय वीर ज्यौ ॥
 आप विषे थिर भयो आपही आनन्द रूप,
 शुद्ध स्वीय ध्यान व्येय ध्याता होय वीर ज्यौ ।
 शुद्ध बुद्ध बढ्यो दूनो मूनो भयो कर्म पूर,
 ऊनो^१ कीनो राग दोष पायो भव तीर ज्यौ ॥१८॥

स्यादवाद शुद्ध चेतना स्वरूप कथन—सर्वथा इकतीसा

जामै उत्पात व्यय ध्रुव धारा तीनो एक,
 समै वीचि^२ होइ रही गुन पर्ये ज्ञान मै ।
 एक है अनेक है कि करता अकरता है,
 भोगता अभोगता बखान्यौ जिन वान मै ॥
 बुद्ध शिव ब्रह्मा रूप मति चेतना सरूप,
 पूरन प्रकाश भये जिन जैन थान मै ।

१७. P नत > नन, छिन्न > छीन । १८. P वर्यो > बढ्यो ।

१९. P यान > वान ।

१. कम, २. मध्य ।

ऐसो शुद्ध चेतन तनवि^३ तन सगति सौ,
नट जैसे बाजी खेलै, भव के चौगान मे ॥१९॥

शिष्य प्रश्न

बोहा—शिष्य कहै मदगुरु सुनो, यह हम मन सदेह ।
जाति भेद तँ क्यु भयो, जड चेतन की नेह ॥२०॥

गुरु उत्तर कथन

बोहा—विष पुद्गल मूर्च्छा करै, मदिरा सँ भ्रम भाव ।
चमक^४ मै आकष गुण, नव नय पुद्गल दाव ॥२१॥
त्यु ज्ञानावरणादि तनु, शक्ति जीउ की तोरि ।
फरहि विबल अज्ञान सौ, फेरे भव की दोरि ॥२२॥

शिष्य प्रश्न

बोहा—हे स्वामी अणु द्रव्य मै, एती शक्ति न होय ।
जीव ज्ञानता मूढ लै, चेतन की गुन खोय ॥२३॥

गुरु उत्तर कथन—सर्वथा तेवीसा

कोउ पुमान पीयै मदपान ज्यु,
होय विशुद्ध करै विबलाई ।
बुद्धि की वृद्धि करै धृत ब्राह्मी को,
मूर्छित जीउ हुवै विष साई ॥
दशन कम उदै लहै नीद को,
जीव की जानपनौ मव जाई ।
त्यु यह पुद्गल कम के खध,
मिलै जीउ शक्ति की लेहु दराई ॥२४॥

दोहा—छत्ती अज्ञान अनादि की, जीउ की करै विकार ।

अछत्ती वात न होय कव, गगन कुसम ज्युं धार ॥२५॥

शिष्य प्रश्न—सवेया इकतीसा

शिष्य कहै सत्तारूप स्वभाव विभाव मानै,

एकता प्रसंग होत द्वैत भाव नमै है ।

अनुग्रह उपाधित वस्तु शक्ति की प्रकाश,

ताही की विनाश दोनुं पुगल में लसै है ॥

अनादिता कहै याकी प्रसंग अनंत होत,

जैसे ज्ञान चेतन की योग मदा वसै है ।

एतौ दोषवत वानि तुम्ह कही कहा जानि,

गुरुजी हमारो चित्त संगय मांहि धसै हे ॥२६॥

गुरु उत्तर कथन

दोहा—मिलै हेतु विनसै जबै, वस्तु अनादि जु सात ।

कर्म भव्य के त्युं नसै, कनक मैल दृष्टांत ॥२७॥

आत्म करै निज भाव की, न करै पर परिनाम ।

स्व स्वभाव किरिया करै, सो पावै शिव ठाम ॥२८॥

असद्भूत निहचै करै, भाव कर्म ए जीव ।

जीव कर्म की फुनि ग्रहै, नय विवहार सदीव ॥२९॥

शिष्य प्रश्न—सवेया इकतीसा

व्याप अरु व्यापक को भाव इष्ट कह्यो शिष्ट,

करता करम की या नित्य ही की रीति है ।

ताहि कै अभाव कैसे द्रव्य कर्म पुद्गल,

करैगौ चेतनराम तासौ जौ व्यतीत है ॥

२६ P उपघात > उपाधित, एते > एतौ ।

२७. P पु नमै > त्यु नमै ।

ध्याप्य अरु व्यापयता तनमय गुण संग,
 परभाव संग ताकी बहिवो अनीत है ।
 तद मे अभाव होन परम तो परतार,
 अनादि अनत जी की करने की भीत है ॥३०॥

गुरु उत्तर कथनम्—सर्वथा इकतोसा

कम व निमित्त वहै आत्मा के परिणाम,
 आत्म परिणाम की निमित्त पूर कम है ।
 यात दुह भावनि की हेतु हेतुमत भाव,
 तगि रह्यो परभाव भरो एतो भम है ॥
 जर्म लाह कम की निमित्त बह्यो शुभ्यव की,
 शुभ्यव की सति की निमित्त लोह कम है ।
 ऐसं जीव कम को गयाग लगो रह्यो तो भी,
 निहृवं विचारै भिन्न कम जीव घम है ॥३१॥

अथ मीमांसक मत कथन जन उत्तर सहित—सर्वथा इकतोसा
 मद वहै मुख दुख भय गिव आदिक की,
 परता प्रवृत्ति एक जीव ब्रह्म प्यारो है ।
 परता न बाहुवी है भोगता न होय बाकी,
 करतादि बाकी सब प्रवृत्ति का प्यारो है ॥
 तामी वहै बुध भैया शिव भेद दानु क्रिया,
 एक करै ऐसो बोध कहा सु विचार्यो है ।
 सुख दुख की निमित्त प्रवृत्ति कही सो सत्त,
 ताकी ताकी कारिज की कर्त्ता भोक्ता धार्यो है ॥३२॥

३० P जीव बहोम > जी को करने । ३१ P भावो की > भावनि की ।

३२ P काक > ताकी ।

जिन वचन

बोहा—कर्त्ता भोक्ता जान कौ, निहचै ब्रह्म सदीव ।

करै भोगवै कर्म कौ, विवहारै यह जीव ॥३३॥

ब्रह्मवादी मत कथन—सर्वैया इकतीसा

ब्रह्मवादी कहै ब्रह्म एक है अखंड सो तो,

ध्रुव ज्ञान मुद्रा धरि वैकुण्ठ में रहै है ।

ताके सब अश एते दीसै जग मांहि जेते,

जड़ ज्ञाता नव नव सब वास लहै है ॥

पूर्ण नित्य ब्रह्म ज्योति ताकी इच्छा जब होत,

तव ताही अंग कौ भी वैकुण्ठ मे गहै है ।

ऐसो शुद्ध ब्रह्म 'देवचंद' निजाधीन वसै,

ताकी कर्म वशि मुखि दुखि कौन कहै है ॥३४॥

ताको जैन उत्तर कथन—सर्वैया इकतीसा

जैन कहै ब्रह्मरीत इच्छा भावसौ अतीत,

गत दोष मोखमय इच्छा दोष ठानीयै ।

असंख प्रदेशी भी अखंड त्रिहुँकाल सदा,

ताके खड करिवै को हेतु कौन जानीयै ॥

ताते जीव है अनंत निज ज्ञान गुणवत,

नित्यानित्य भाव मंत शुद्ध नै बखानीयै ।

तामै जे विभाव वशि तेते भववासी कहै,

जेते कर्म मुक्त तेते सिद्ध बुद्ध मानीयै ॥३५॥

अथ बौद्ध मत कथन—सर्वैया इकतीसा

बुद्ध कहै प्रथम समै मै जोउ जीव हुंतो,

दुतीय समै मै सोउ जीव वस्तु नांही है ।

करता है कर्म की जो मो तो भोगता न होय,
 करै और लहे और मेरे मत माही है ॥
 जेमे जीव तैसे और प्रभु सब युही मानै,
 जानै न सरूप शुद्ध बुद्ध रीति साही है ।
 परजै सभाव की मवया द्रव्य कहै,
 रहै मदमत्त निज मोघ धारा ढाही है ॥३६॥

जन कथन—सर्वथा इकतीसा

जैन कहै वस्तुरीत नियत दरब नय,
 नित्य निराप्राध परजाय नै अनित्य है ।
 समै समै नयो होय तय कैसे ऐसी बात,
 जानै यह मेरो कीनी यह मेरो कृत्य है ॥
 बालपनै कीनो काम बृद्धपनै याद आवै,
 एकात अनित्य पक्ष गहना अमत्य है ।
 सातै उतपात व्यय ध्रुव धाग तीनौ सदा,
 एक समै एक वस्तु विचै वही सत्य है ॥३७॥

ध्यायमति मत—सर्वथा इकतीसा

ऐसी बानी सुनी मन माहि न मुहानी तर,
 ध्यायमती बोल्पो निज पक्ष को पयारि कै ।
 नारी विनु होय कैमे सत न का उपजन,
 भोजन की करै सोऊ पाप विनु करि कै ॥
 उद्यम कै कियै विनु कैमे काय सिद्ध होत,
 उद्यम प्रधान यातै कही और हरि कै ।
 यातै करतार जीव बह्यो विद्वनाथ ऐसे,
 बीरज की फोरि निज उद्यम की धरि कै ॥३८॥

३६ AB मृद > बुद्ध, साही, A, ढाई ।

३७ P गहर्व > गहनो, याचि > विष ।

ताको जैन उत्तर कहै—सवैया इकतीसा

जैन कहै एतो वात कही है एकातनय,
 स्याद्वाद वादी ऐसी वात नही कहै है ।
 चेतन के वीर्य जागे भागे परभाव सब,
 याते यह उद्यम व्यौहार मांहि गहै है ॥
 कर्म उदै उद्यम सौ करै कर्म भाव ही कुं,
 आतमा को उद्यम सो गुन त्रय वहै है ।
 कर्म कौ सामित्वपनौ भेद ज्ञान भाव विनुं,
 अह बुद्धि भाव वसि चेतनजी लहै है ॥३६॥

शिव मति कथन—सवैया इकतीसा

शिवमति कालवादी काल पक्ष गहै रहै,
 कहै सब जग वात काल मत पीन है ।
 काल वशि बालक सो युवा होय वृद्ध होय,
 काल पाय वस्तु जो नवीन सोई छीन है ॥
 काल वशि रिनु फिरै काल पाय फल खिरै,
 जनम मरन वात काल ही मे लीन है ।
 यातै सुख दुख राशि शिववास भववास,
 रवि शशि उदै अस्त काल कै अधीन है ॥४०॥

जैन उत्तर कथन—सवैया इकतीसा

जैन कहै सुनो भइया जेती कही तुम वात,
 तेती सब साची पै एकात नाहि गहनौ ।
 स्वभाव नियत पूर्वकृत फुनि उद्यम सौ,
 पंचमो तो समवाय काल वशि कहनौ ॥
 पांच समवाय मिलै फलै तब शिव काज,
 समवाय मिल्यै विनु काज नांहि सरनौ ।

मत पक्षपात हरि स्यादवाद भाव धरि,
नय भग भेद युत ऐमी ज्ञान धरनी ॥४१॥

सर्वमत एकस्वीकरण जन मत स्थापन-सर्वथा इकतीसा

भौमामक कर्म माने विवहार पक्ष गहै,
वेद पाठी ब्रह्म माने द्रव्य नय गहतु है ।

धौध छिन भग कहै परजाय नय न्याय-
मत्ती कहै करतार उद्यम महतु है ॥

शिवमती कालधात्री मयै कालावीन मानि,
पाचो समवाय तजि टेक मे रहतु है ।

एते सय अशवादी अथ गजरीति गहै,
स्यादवादी मय ए अनेकता कहतु है ॥४२॥

अथ षट् वक्षान जैन के अश रूप कथन-सर्वथा इकतीसा

विवहार नय गहै प्रकृति है मुख्य रूप,
निहचै मभाव ब्रह्म नित्य ज्ञान धाम है ।

परजाय नै अधुय सुद्यम समाव धर,
उद्यम मभाव नीयै करतार राम है ॥

पाल चाल है प्रवाह परनाम चक्रगति,
यु अनेक अग्रान जीव परिनाम है ।

एक अग तजि मरग गहै सो सुबुद्धि,
एक अग रग रागी सो बुबुद्धि त्वाम है ॥४३॥

अथ स्यादवाद सरूप कथन-सर्वथा इकतीसा

आपनै चतुष्प गुन है सो नाहि परगुन
यात दोनु वात मम कथन रहतु है ।

४१ P ये > ए, मिथ्या विनु । ४२ P मानि, माती ।

४३ P मुद्यम, उद्यम ।

है भी नाहि कह्यो जाय नाहि नाहि कह्यो जाय,
 है है न न कह्यो सर्व नय मै कहतु है ॥
 नित्य है अनित्य है कै सत है असत है कै,
 अव्यक्त वक्तव्य सब अभिमतु है ।
 ऐसो प्रभु चिदानन्द ज्ञानादि त्रिगुन योग,
 'देवचन्द' पद पाय आनन्द लहतु है ॥४४॥

॥ तृतीयोधिकार. समाप्तम् ॥

॥ मुक्ति-मार्ग नाम चतुर्थाधिकार ॥

सर्विकल्प निर्विकल्प ज्ञान कथनम्

दोहा—नव नव गुन मय जीउ कह्यो, यह सर्विकल्पक ज्ञान ।
 कर्म नाश कर एक भय, निर्विकल्प को ध्यान ॥४५॥

अथ निर्विकल्प ध्यान महिमा कथनम्—सर्वथा इकतीसा

अनादि अज्ञान लीयै राग दोष मद पीयै,
 मोह महातम सो महातम वधायो है ।
 जीव लोक जीत लीयो ज्ञान गुन मुंद दीयो,
 कीयो निज राज परभाव को पसायो है ॥
 ताको परताप तोरि कर्म दोरि कौ मरोरि,
 भोरि परभाव राज ज्ञान राज धायो है ।
 ऐसो निर्विकल्प ध्यान ताको महिमान मान,
 जामै 'देवचन्द' और को कहन हायो है ॥४६॥

अथ निर्विकल्प ध्यान हेतु वचन-सर्वथा सेवीता

ग्यान को मोह अछेह आनन्द को, फद वी कद वी छेदन हारो ।
 धोरज शक्ति अनन्त को नायक, लायक क्षायक भाव उजारो ॥
 धायक मोह वी प्रायक मोह को, गोज लिये निज बोधि पसारो ।
 ध्याम एवत्त्व को हेतु है आत्म, या तम् ताप का तारन वारो ॥४७॥

अथ तन हेय वचन

बोहा—ज्योति अनादि अनन्त घर, पर वरता निज मानि ।
 भया मोह आन वी, स्व स्वरूप गुन मानि ॥४८॥
 ज्ञान दृष्टि छुट भई, तन परि चेतन भ्रंति ।
 पर क्रिय करता भ्रम भयो, मतयाना दृष्टाति ॥४९॥
 जैमो इद्री भोग परि, रे तेरो अनुराग ।
 तमो आत्म ज्ञान सु, धरिचित यह शिव माग ॥५०॥
 जो रूपी तो मैं गही, मैं अरूप चिद् गह ।
 याते तजि परभाव गर, आत्म रूप भजि एह ॥५१॥
 या तन वी ममता गर्य, आत्म तत्त्व हृद होय ।
 सायी जो अपनो गिनै, मूढ बूढ है मोय ॥५२॥
 तन ए पुद्गल पिड जड, तू चेतन अम्मान ।
 ऐमो अग्नि मिलाप सब, जुयों किसी बिष आनि ॥५३॥
 माम अग्नि रुधिरादिवी, वरै दुग्धा पेलि ।
 तमय ता वी निज गिन, यह अज्ञातता दग्नि ॥५४॥

४७ तोरनहारो । ४८ P° घर > पर ।

४९ P° चिद्रूप > चिदगह, यज्ञ > एह ।

५२ P° अमलानी ।

सर्वैया तेवीसा

देह को नेह तजो तुम चातुर, आतुर भाव सदा इन मांहि ।
 व्यंतर कै पुर सी छिन भगुर, रूप की सोभ सो वाहर छांही ॥
 घणा दिन के सब सी दुर्गन्ध कै, दूपन गेह वदी इन मांही ।
 या तन की ममता जु तजो तो(लीं), आतम जान जगै तुम्ह नाही ॥५५॥
 दोहा—देहादिक को भिन्न गिनि, गहे आतम शिव कूल ।
 पर पै निज अभिमानता, यह भव भ्रमणा मूल ॥५६॥

निष्पृह भाव कथन-सर्वैया इकतीसा

अधरम कौ घाती शिव माग कौ सघाती ऐसो,
 रच नाहि पक्षगाती अध्यातम राव है ।
 परम नरमवर भेद ज्ञान भाव धर,
 हरि पर दोष कर्म नास को उपाव है ॥
 तन मन त्रिया धन यौवनादि पर गिनै,
 मोह द्रोह मै न सैन जीतवे को दाव है ॥
 नरक की भीति नाहि सुर पद प्रीति नाहि,
 भव रीति रीत्यौ ऐसो निष्पृह भाव है ॥५७॥

दोहा—स्व स्वरूप गत दृष्टि सौ, नाहि शक्र पद चाहि ।
 स्व स्वरूप गत दृष्टि को ?, लघु पद लहै उछाहि ॥५८॥
 आतम अनुभव सुख सौ, भ्रष्ट भए दुर्बुद्धि ।
 विषयन रति चित्त मै करै, सूकर कादम लुद्ध ॥५९॥
 परम ज्योति सुख स्वाद रत, योगी योग निरत ।
 कुछित अन्न जु राग त्रिनु, जानहि विषय अनित्त ॥६०॥

५५. पांही > माहि, AB परसी > पुरसी, B नी > सी ।

५७. मारग > माग ।

५८. P प्रति मे पद्याक, ५९-६०. ऊपर नीचे है ।

आत्म स्वरूप वर्णन-सर्वथा तेवीसा

सुद्ध सुष्ठुद अफद अमद, अनद को कद सदा मुख धारी ।
 एसो अनोपम आतम ज्ञान, सुधा घरकुण्ड मे झीनि अपारी ॥
 अनादि अज्ञान के भ्रम लग्यो यह, क्रम कलक की मैल पखारी ।
 सत लहै निरवान को थानकि, दर्शन ज्ञान चारिन सौ भारी ॥६१॥

बोहा—स्व स्वरूप अवलर विनु, शिव पय और नहीज ।
 मुक्ति म्त्रो बशि करन को, सोह ध्यान मुवीज ॥६२॥
 जैसे पकज दल अमल, रहै कर्म सौ भिन्न ।
 तो आतम स्व समाव मय, कम खेद निर्विन्न ॥६३॥

इद्री सुख हेय कथन-सर्वथा इकतीसा

जग इद्री सुख जेत तते सब दुख रूप,
 कहु न समता है ममता अनत है ।
 जैसे पथी मरुदेश ग्रीपम सम प्रवेश,
 मध्य दिन नीर विनु भोजन करत है ॥
 काम भोग रति मति उचित न तो पै राम,
 पाम राजि जैसे दुख राज में महत है ।
 पतग ज्यु दुख देय निहचै मरूप हेय,
 गेय योग उपादेय माग में अकात है ॥६४॥

बोहा—उत्तम पद तैं तू परधी, मो विभाव अनुभाव ।
 तो भी वाही मैं रमौ, जहा वहाँ गुन राव ॥६५॥

६१ P सुवृद > सुष्ठुद, जील > चीलि, AB भ्रम > भ्रम ॥ ने > सौ ।

६४ P दीन > दिन, वाज > राजि, जसे > जमो, राजी > राज, अनत ।

सर्वथा तेषीसा

यह शरीर है पीर को पीहर, ई पर आत्म की हर हेरी ।
 बेरी करेरी परी यह ज्ञायक, काड अनेरी रही नही मेरी ॥
 ज्ञान सखूप मयी भजि चेतन, ए तन पै मन प्रीति उधेरी ।
 ज्ञान को मोगर लेकर आत्म, तोरितुं मोह जंजोर की जेरी ॥६६॥

शरीर पर फथन—सर्वथा इकतीसा

मैं तो तनधारी नाहिं एतो तन मेरो नाहि,
 मैं तो ज्ञान गुन धारी कर्म सी न्यारो हूँ ।
 मैं तो चेतना सखूप एतो जड़ भाव रूप,
 मेरो याकौ कोन नेह एह न विचार्यो है ॥
 मैं तो नित्य ए अनित्य प्रगट अशुचि खान,
 हानि धान ऐसो देह मोकों कैसे प्यारो है ।
 मोह के विटंब घेर्यो भव काल धिति प्रेर्यो,
 ऐसी भेद ज्ञान मैं तो चित्तमें न धार्यो है ॥६७॥

परहेय आत्मा उपादेय कथन—सर्वथा इकतीसा

शुद्ध दृष्टि समकित्ती प्रकृति विरत चित्त,
 करम को करत न कहो कह्यो जात है ।
 मिथ्या दृष्टि क्रूरमती पर रंग राच्यो संतो,
 परकृत फल ही की भोगता कहात है ॥
 निज पर कौ विवेक करै भेदज्ञान छेक,
 टेक डारि के अनेक यहै जैन बात है ।
 पर मुक्त गुन युक्त भुक्ति विनु मुक्ति युक्त,
 ऐसे निज चेतन को देवचंद ध्यात है ॥६८॥

६६. P उधेरी > उधेरी । ६७. P रूप > रूप । ६८. P प्रकृते, P पर भुक्त
 गुण युक्ति भक्ति विनु मुक्ति युक्त ।

सन सकल्प कथन

घोहा—विकल्प जाल कलनोल करि, चपल मनोजल फद ।
चिदगह चेतनता दुरै, ज्यु बाहर मे चन्द ॥६६॥

भात्मा मोक्ष हेतु—सर्वैया तेवीसा

आतम आतम भाव भयों द्रुव, चेतनता गुन ग्यान की माई ।
ध्यायका ध्येय अभेद चिदाकर, ध्यावहु त्याग कै सीज पराई ।
चचल भाय नजो भजि एक्ता, चित तरंग-अनग हराई ।
सादि अनत महत अमीत सो, पावहु मोक्ष प्रधान सवाई ॥७०॥

घोहा—परगुण समुख ज्ञान साँ, चेतन परवशि होय ।
निजगुण समुखता लहै, लहै आतम गुण मोय ॥७१॥

ज्ञान धिरोकरण

घोहा—चित्त प्रीति ज्यु देह पै, त्यु चेतन पै होय ।
तीहु काल भी कम को बधन लहै न मोय ॥७२॥

भात्मा अवध कथन—सर्वैया इकतीसा

जडता सुभाव लीय मोहमद पान कीर्य,
ऐसा पर द्रव्य सो तो मेरो धन नाही है ।

मैं तो पाको नाथ नाहि भ तो नाथ चेतना की,
ज्ञानादि अभग रग जाके सग पाहि है ॥

अतरंग बहिरंग अग परसग भगि,
इन्द्री की उमग तजि जामै पर छाही है ।

होय जो चेतन एनो जसो तो सभाय तैसो,
तो ए कम बध पुज तो कु न कहा ही है ॥७३॥

६६ P चितद्रह । ७० P घयो > भयो, P अमीत > अमीत ।

७३ P पाही > पाहि ।

आत्मा सक्रिय कथनम्

दोहा—निक्रिय लोह क्रिया लहै, अयस्कांत मणि योग ।

त्युं निःक्रिय सक्रिय हवै, जीव कर्म के रोग ॥७४॥

परमात्म स्वरूप कथन—सर्वया इकतीसा

गुद्ध बुद्ध चिदानन्द निरदुन्द भी मुकद,

अफद अमोद कंद अनादि अनत है ।

निर्मल परब्रह्म पूरन परम ज्योति,

परम अगम अकिरिय महा संत है ।

अविनाशी अज परमात्मा मु जान जिन,

निरजन अमलान सिद्ध भगवंत है ।

ऐसो जीव कर्म संग-सग लग्यो जान भूनि,

कसतूरि मृग ज्युं भवन मे अटंत है ॥७५॥

आत्मज्ञान लाभ हेतु कथन

चौपाई—करम-करम कारिज सौं न्यारा । जे व्यावहि चेतन की धारा ॥

लहै नित्य पद तेह अनन्त । स्याद्ववाद युन सदा महत ॥७६॥

दोहा—ज्ञान दृष्टि चारित्र मय, एक गुद्ध निरदोष ।

स्व स्वरूप एकत्व भजि, करहि कर्म को सोप ॥७७॥

शिष्य प्रश्न

दोहा—एक द्रव्य मै तीन गुन, कैसे रहै एकत्र ।

यह हम मन सदेह है, कहीं गुरु परम पवित्र ॥७८॥

गुरु उत्तर कथन—सर्वया इकतीसा

जैसे पीत स्निग्ध गुरु तीन गुन भेद विनु,

निरन्तर आदि लेकै कंचन मे रहे हैं ।

७६ P की रज सो > कारिज सौं, संत > सदा । ७७. एकत्र > एकत्व ।

७५. P निरदुन्द, भुवन ।

दहन पचन फुनि तपन ए तीन गुन,

अगान में एक सम जिनवर कहै है ॥

शीतल प्रतल बलि निरमल जल विधि,

तीनों गुन एक सम स्वभाव सों वहरै है ।

तैसे जीव द्रव्य माहि ज्ञानादि त्रिगुन रहे,

निहच सुभाव से अभेद रूप गहै है ॥७६॥

ज्ञानगुन भेदाभेद कथन

जो विचारीये नय विवहारा । तौ ज्ञानादि जीव सु न्यारा ।

राहु ससि जैसे यह लीजै । है अभेद पै भेद कहीजै ॥८०॥

भेद ज्ञान महिमा कथन—सवया इकतीसा

काम भोग लालच दे सब जीव वशि कीने,

भीने मोह रम में निरतर विकल है ।

ताकी छाक दूर हूँ आप पर भेद करै,

ऐसो भेद ग्यान गुन अदोष अमल है ॥

धारावाही रीति लीयै ताको धरै सो मुमुक्षि,

कर्म के मोरन को कारन सफल है ।

अजल सकल बिनु सकल जगत परि,

रहै मिद्ध हूँ मैं जैसे तोय में कमल है ॥८१॥

आत्म बुद्धि उपादेय कथन

दोहा—आत्म बुद्धि शिव को करै, देह बुद्धि ससार ।

तातैं तन धी त्याग कै, करि निज गुन सों प्यार ॥८२॥

पुण्य पाप दोनु प्रकृति, है पुद्गल को सध ।

इन पर आत्म बुद्धि जो, इहै करम को बध ॥८३॥

अथ शिष्य प्रश्न—सर्वैया इकतीसा

दुष्ट भाव पाप हेतु मुष्टु भाव पुण्य हेतु,
 याते दोनुं कर्म माहि हेतु भेद मानियै ।
 पाप उदै है असाता पुण्य उदै होय साता,
 याते क्षार मिष्ट रूप रत्नादभेद ठानीयै ॥
 पाप तो कुगति देय पुण्य सद्गति देय,
 गति भेद परतक्ष फल भेद जानीयै ॥
 पाप तो लगे अनिष्ट पुण्य सबही को इष्ट,
 सकिलेस सोधिनु मुभाउ भेद आनीयै ॥८४॥

अथ गुरु उत्तर कथन—सर्वैया इकतीसा

गुरु कहै पाप पुण्य दोनु कर्म जाल रूप,
 हेतु रस गति फल भेद नाहि लेखीयै ।
 कप रोग पाप भोग पुण्य है अकम्प रोग,
 दोनुं दुख खानि बिनासीक रूप देखीये ॥
 पाप सी अरुचि भाव पुण्य सेती प्रीति दाव,
 मिथ्यादृष्टि जीव कुंए कुमति विगेषीये ।
 दोनुं जड़ भाव रूप दोनुं की अज्ञान रूप,
 इनही सी न्यारी सोई समकित्ती देखीये ॥८५॥

मिथ्यामति वरनन—सर्वैया इकतीसा

पाप सी विमुख अरु पुण्य ही कै सनमुख,
 सुगति सुं रख धरै कुगति सीं डरै है ।
 करता मै कारज की कीनी मै कारज ऐसो,
 अहं बुद्धि मातो विपरीत रीति धरै है ॥

आपको न पहिचानै ठानै भ्रम भाव मन,
 तन घन निज गुन करम को करै है ।
 कपट को आसन अज्ञान को विकासन है,
 अँसौ मिथ्यामति भवसागर ये परै है ॥६६॥

पुन मिथ्यामति कथन—सर्वेया इकतीसा

आपको न जानै चित परहो को मानै वित,
 ठानै भ्रम भाव रत जरम बहर मै ।
 चित्त माहि धरै वाक सुख ही को काख राखै,
 डोलत निसाक राक मत्त ज्यु सहर मै ॥
 हानि थानि मल खानि जानै न गितानि आनै,
 राचै तामै अति विष वेद ज्यु जहर मै ।
 उल्लट अटत नित लोटत कत्रतर ज्यु,
 मुनदन नाहि कबु मिथ्या को लहर मै ॥६७॥

पुन मिथ्यादृष्टि कथन—सर्वेया इकतीसा

वरगत जीवन^१ ज्यु जीवा घटत नित,
 छिन-छिन छीन तन मन भी घटतु है ।
 काल की न घात जानै कर बहुकाल तात,
 तात मात भ्रात सग सान वो बढतु है ॥
 धरम मरम विनु भरम के घेर परघो,
 ज्ञान विनु क्रियारत पुण्य को रटतु है ।
 इतने पै भी मूरख पुरुष निज रख नाहि,
 सुख मुख भयो नित दुख मै अटतु है ॥६८॥

६७ P आनि । ६८ P नीत विन छीन > निनछिा छिन, कु > को ।

^१ जल ।

पुन मिथ्यामति कथन—सर्वथा तेवीसा

ग्रन्थ पढ़े न बड़े कछु ज्ञान, अग्रान मै लीन ज्युं पाथर^१ नै ।
मीन रहै गहै जांग जुगति, सहै बध धवन हैष^२ रमै ॥
आसन मडि आसा सब छंडि, पवन के साथक है हरसै ।
इती करवत करै विनु ज्ञान जे, मूड मिथ्यातमती नरमै ॥८६॥

मिथ्यामती दूहा

मिथ्यामति अपराधिनी, परगुन चाहै आप ।

ज्यु ज्यु पर मपति बड़े, त्यु त्युं होय संनाप ॥८७॥

पर वस्तु हेय आत्मा उपादेय—सर्वथा इकतीसा

वचन जुगति चित तन दुति मन थिति,

हित अनहित रति अरति करति है ।

अतेउर पुर वर असन वसन वन,

वस्तु गन अन जहाँ नयन की गति है ॥

पुण्य पाप आदि देय गेय वेय हेय सब,

सयोग वियोग थिति जामे नित्य प्रति है ।

अक्षर त्रिगुन साथ देवचद गुन नाथ,

उपादेय रूप एक आत्मा अमित है ॥८८॥

पुण्य पाप हेय कथन—सर्वथा इकतीसा

पुण्य पाप पुदगल मल है अखिल दल,

खल^३ गुल^४ डलि मनि व्यक्ति भेद धरै है ।

याते पुण्य पाप रोष कीने निज बोध सोध,

व्याध की समाधि राग रोष (दोष) झरै है ॥

८६. P ग्रहे, सहि, AB साथ कहै > साथक है । ८७. P की रति है > करति है ।

१-पत्थर, २-अश्व और गदहे के समान, ३-तिलो की खली, ४- गुड़ ।

इधन अभाव जैसे अग्नि उद्योत नाहि,

बीज के अभाव जैसे वृक्ष वृद्धि टरै है ।

तसे भाव कम नास ज्ञान चेतना प्रकाश,

परम अनन्त पद देवचन्द वरै है ॥६२॥

आतम शिक्षा कथन—सर्वथा तेवीसा

फरम उपाधि अनादि के ध-धन, जीत लगी तुमची^१ परसों ।

रागरूप को रग लगौ जीउ, नील को रग जु कापरसों^२ ॥

पारकी सपति आपनी थापि कै, थापन दावन को तरसों ।

भये तुम ग्रह्य करम्म के कारक, मूरख रास^३ लगे परसौ ॥६३॥

॥ धविधि कथन

घोहा—बधै अपनी साल सौ, बुलीया^१ वर तियंच ।

त्यु अगुद्ध निजभाव सों, बधै आतमा खवि ॥६४॥

मिथ्यामति कथन गुरु उत्तर सहित—अधया इकतीसा

ईश्वर किरत^१ इत आतमा पहत नित्य,

ज्ञान रित^२ मत रत मद मतवारै है ।

ईश्वर की इच्छा करि नर फिरै बहु परै,

नरग सरग तिरजग योनि धारै है ॥

एते परि जैन कहै आतमा अमृत सत

अरूपी दिगादिवत् अलिपत सार है ।

धुगति सुगति यात आनि कोऊ नाहि देत

निज हृत्न कमफन भोगतै विचार है ॥६५॥

५- तुम्हारी, ६- बपड़े से, ७- खात ।

६४ P तीर पव > नियच । ६५ P नित । अक्रिय > अमृत ।

१- रेणुम का कोड़ा या मण्डी, २- वृत्त, ३- रिक्त खाली ।

लोकालोक तीनकाल उत्पत्त ध्रुव नाश,

जाकी ज्ञान ज्योति मांहि जगत समायो है ।

ऐसो परमात्म आत्म महात्म धारी,

परम आनन्द कन्द देवचन्द पायो है ॥१०२॥

दोहा—पूर्व कृत निजकर्मफल, ग्रहै भोगवै जीउ ।

तो भी ज्ञान वैराग बल, बंधन विना सदीउ ॥१०३॥

शिष्य प्रश्न—सबैया इकतीसा

काम भोग भोगते भी अवन्धक कह्यो जाता,

एतो बात हम मन माहि न सुहानी है ।

श्रावक मुनीश एतै क्रिया करै सब जेतो,

तेतो फल विनु विनुकाज की कहानी है ॥

दान दया तप जप दम उपगम भाव,

तजेगे कठिन बात जेतै जग प्रानी है ।

रहेंगे प्रमाद रत निरबन्ध अन्ध जैसे,

ज्ञान मन बन्ध के अवन्ध मति ठानी है ॥१०४॥

गुरु उत्तर बचन—सबैया इकतीसा

जैसे विष वेद नर विष को विकार जानै,

करै ताको उन्वार विष अपहरै है ।

सोई आप विष भखे तो भी कुछ नांहि लखे,

मूरछा न पावै सो तो लोक विष हरै है ॥

जैसे नाग मयधर नागसां गहावै बग,

आप अडकित रहै नाग ही सो लरै है ।

तैसे जाता पूर्वकर्म जोग भोग भोगवै पै,

रहै अनिमित्त तातै बन्ध नहीं बरै है ॥१०५॥

१०२. P कि > कै । १०३. P जीव मदीव ।

१०५. P नि नंग > अनिमित्त, अनिमित्त > अनिमित्त ।

पुन गुर वचनम्—सवया इवतीता

जैसे कही दावानल जलें अति ही चपल,
जालें पुरवन जामें गिरी कूट जन है ।
तब कोऊ मजवादी मग्न ही सरुति सेती,
आगि शक्ति बच राखें तब ताप टलै है ॥
मो तो मग्नघर घर तामें कूद कूद परै,
फिरैं घिरैं इत उत तो भी नाहि बलै है ।
तसे जाता रोघ शक्ति उघ शक्ति रोघखीनी,
भोगवे पै भोग तोभी कम में भिलै है ॥१०६॥

शिष्य प्रश्न—सवया इवतीता

शिष्य रहै मामी तुम्ह कही एती बात माचो,
तो भी हम मन माहि सदह तो रहै है ।
मूढ़ जैसे भोग रीत समविती भोगवे हैं,
तो भी तुम वैन में अग्य रीत गहै है ॥
जैसे कोऊ सन्त नर मह प आरति, नाहि,
रति माही बाहि कहै गय नाहि गहै है ।
तसे जाता द्रव्य तेग भोगवै पै राग निनु,
अभाव नम न तो बच नाहि लहै है ॥१०७॥

जिन मत क्या

बोहा—सर्व भाव निज रूप भत, यह जियर की धानि ।
तार्त कर्त्ता कम की, क्या गितेय यथानि ॥१०८॥

१०६ P शाल > जाल, अगि, लिहें > भिल ।

१०७ P वैन में > वन में ।

आत्म गुण वर्णन—सर्वैया इकतीसा

करतार भोगतार ऐसे जे विकार भार,
 अपहार करि वर थिर भावलह्यो है ।
 गुन घनघाती च्यार ताको बंध तोरि डार,
 अमन्द आनन्द कन्द मोद वृन्द वर्यो है ।
 शुद्ध सांत है अनन्त अहत विचित्र वृत्ति,
 परं ज्योति सत्य नित्य सत्य रूप रह्यो है ।
 सब जेय मेया मये जेय करि हेय हरि,
 शुद्ध बुद्ध ब्रह्म मेरो सदा काल कह्यो है ॥११६॥

आत्म सरूप—सर्वैया तेवीसा

मुक्ति को माग सुवाग विराग कौ, दर्शन ज्ञान चरित्र त्रयी है ।
 तन्मय आत्म आत्म वेदिकै, मोह उच्छेदन रीति लयी है ॥
 आत्म ज्ञान कला कलिवै जमु, निर्मल संवर बुद्धि भयी है ।
 सो नर जो कछु कर्म करै सो तो, पूरव कर्म उदीक मयी है ॥११७॥

पुनः सर्वैया इकतीसा

करता हु भोगता हुं निरन्तर कारज को,
 ऐसो अगन्यान जेतो काल मोकुं रह्यो है ।
 तेतो काल शुद्ध अनुभव न लहनु विनु,
 अज्ञानी जन मन भमन कुं गह्यो है ॥
 अव सर्वज्ञ जिन वचन अमृत पीत,
 अति रसवत सत सन्त रस लह्यो है ।
 चिरकाल पान करि सुथित सुधृति वर,
 अजर अमर परब्रह्म पद लह्यो है ॥११८॥

पुन सर्वथा—तेषीसा

आत्म रूप के जानपने बिनु, चेतन यी बरतार नहीज ।
 ताही प जानपने जिन ज्ञान मे, या प अरारक भाव लहीज ॥
 याही त रागरु दोष उद्रे द्रुन, मो वित्त ताहि चित्त यु धरीजे ।
 भिन्न रह्यो निज नेम जु मानय, सो नहि आ भय माहि नयोजे ॥११६॥

पुन आत्मस्वरूप—सयथा इक्षतीसा

जा ननि अविद्या जम दृढ सम अघाम ताहि मै,
 निमित्त भयो निज ज्योति हरि तै ।
 ता सनि प्रिमाय एष राग द्वेष नेम्य परि,
 आत्मोक्त बुद्धि भई एत भाव्य परि तै ॥
 अर निरपाल गिर तही के उपन जेमे,
 नेद ज्ञान गुन लखो निररा परि तै ।
 तय पर रीति हर भाग पून ब्रह्म मेनी,
 विद्युनि विदुनि ध्रुव भयो गुन उरि तै ॥१२०॥

आत्ममाह्वार कथनम्—अद्वित्त

मि जगत् ॥ गुन रह्यो वर ध्यान म ।
 आम्हा जायो मत्त्व तोहि गुन मात म ॥
 न्यु रन्दि मही द्रव्य अमृति तित्त भ कर ।
 तसे ज्ञान ज्ञान पाय ज्ञान गुन ज्ञान पर ॥१२१॥

आत्म महिमा कथनम्—सयथा इक्षतीसा

गहन अतीव आव विपद है अनहद,
 पर अमृष्ट स्पष्ट निरार स्पष्ट है ।
 प्रकटित ज्ञान गुन विभूति अन्न सोन,
 पर की विभूति मो ती प्रीति जाही नष्ट है ॥

जाही को सवाद स्याद्वाद कौ प्रमोद होत,
 अगणित महा भोग संपदा प्रविष्ट है ।
 बुद्धि के निधान निरवान थान पामिवै को,
 सावधान होत नित ऐसो ब्रह्म इष्ट है ॥१२२॥

पुनः आत्म महिमा—सर्वैया इकतीसा

महाव्रत तप ताप यम नियमादि जाप,
 प्राणायाम योग कै अभ्यासी जे प्रबल है ।
 क्षुधा तृषा शीत क्षिति सोवनादि परीषह,
 अनुलोम प्रतिलोम माहि नाहि चल है ॥
 इत्यादिक क्रिया गुन जाके जान पनै विनु,
 नाथहीन सेना जैसे अति निरबल है ।
 जाके जाने देख्ये सब जान्यौ देख्यो जग द्रव्य,
 असौ परब्रह्म मेरो ध्यान सु सफल है ॥१२३॥

चिदानन्द उपादेय कथन—सर्वैया इकतीसा

सतत अनन्त तेज पुञ्ज सौ विराजमान,
 दलित अज्ञान मल अचल अमल है ।
 सोई तत्त्व गहो भैया रहै भव कीच बीच,
 तो भी यातै भिन्न जैसे पंक में कमज है ॥
 इंद्र चंद्र चक्रवर्त्ति पद सुख को सवाद,
 जाके सुधा स्वाद आगै मानुं क्षार जल है ।
 ऐसो परमात्मा मैं सोहुँ सोहु ध्यान गम,
 अगम परम ब्रह्म धाम में सकल है । १२४॥

अशुद्ध जीव कथन बहिरात्मा की निंदा—सर्वथा तेषीसा

ग्रन्थ भने सब सासन कै, अमिमान घरै विचरै जग जेते ।
आपको पण्डित मुख्य कहाय, करै नित्य वाद विवाद अचेते ॥
आत्म बुद्धि तर्ज न सरीर सौं, क्या पढिकै गुनिकै समझैते ।
पाठ पठ्यौं गुन कारन ना कह्यु राम हि राम जपत ज्यु तोते ॥१२५॥

जैन धर्म प्राप्ति कथन—सर्वथा तेषीसा

मैं बहु काल अज्ञान की चाल मे, आपने रूप के भाव भुलानी ।
सो निज रूप लह्यो सुलह्यो अत्र, मैं सब मैं भवसी सुलझानी ॥
चेतनयत सदा अति उज्जल, सत अनन्त सुज्ञान मिलानी ।
ज्ञान को बीज अखैज निरजन, सज्जन श्रीजिन धम पिछानी ॥१२६॥

आत्म पाठ स्तुति कथन—सर्वथा तेषीसा

आत्म सु मयि आत्मज्ञान को, भानु उद्योत ज्यु ज्योति उठै है ।
वास को काठ घसत ज्यु आपमे, आपमु ज्यु दव दाव कहै है ॥
याहि तै आत्म मगन मती, विरली सुप्रति शिव भाग चढै है ।
आत्म ज्ञान विना मरनौ नहि, साधक आत्म पाठ पढै है ॥१२७॥

बोपाई—जैसे रजु सरप भ्रम मानै, त्यु अज्ञान मिथ्यामति ठानै ।

देह बुद्धि को आत्म विचारै याते भ्रम भ्रम हेतु पसारै ॥१२८॥

अज्ञान बिलास कथन—सर्वथा तेषीसा

मैं बहु बेर अज्ञान ये फेर मैं और की औरति हेर न धायो ।
वैध्यो भव लोह विमोह की नीद मैं, ज्ञायक दृष्टि की तेज दवायो ।
आत्म बुद्धि भई पर पै, ढरपै अरपै निज मीत कहायो
'चद' कहै गुन चद लहै विनु काल आत भमत गमायो ॥१२९॥

ज्ञान जागृत दशा—सर्वथा इकतीसा

याहि कै पिछान्यी अति अतिसं चेतन सत्ति,

जाग्यै जामै तीन लोक अलोक ममाने है ।

याही कै सरूप जान्यै जानै पट भाव सब,

एतो पट भाव कै पिछलगू कहानै है ॥

अतिही निसत्त मति शास्त्र कै विचित्रताई,

जाकै जानपनै विनु श्रम रूप ठाने है ।

जैसे कन विनु तुस खडन है निकारन,

तैसे ज्ञान विनु सब काज निफलाने हे ॥१३०॥

जाके अनुभव सेती भागी भव भय भीति,

निज परतीत सो अनन्त नीत जागे है ।

जैसे भान के उद्योत सब जग ज्योति होत,

भासै घट पट भाव अन्धकार भागे है ॥

तैसे जाकै तेज आगै राग द्वेष ग्रन्थि भागै,

लागै न करम नव शिव जाके आगे है ।

परम आनन्द कन्द देवचन्द सुखकर,

धरमी ब्रती मुनीश जाकै ध्यान लागे है ॥१३१॥

दोहा—आतम आतम ध्यान गत, न भजे और उपाय ।

जैसे पावक काठ विनु, सहिजै उपशम थाय ॥१३२॥

पुनः आत्मा गुन कथन

छप्पय—परम सुखी श्री थान, नाहि को दूजो यातै ।

निरभय पद ए मुख्य, और सब जन की वातै ॥

यहै सत रस ज्ञान, मोख्य मारग भी एही ।

कर्म वृक्ष के छेद, यहै फरसीज अवैही ॥

इह ज्ञातवान् भगवान् वर, ज्ञानादिक गुण त्रय वहै ।

यह भजो रमो जानौ इहै, सबमाहि दुगम इहै ॥१३३॥

अथ चेतन गुन कथन—सर्वथा तेवीसा

ज्ञानि । अज्ञान के हेतु भए तुम, आपही तैं भ्रमते भव माही ।
कारक बुद्धि भई परसी, तरसी चित्त मैं सुख सपति पाही ॥
आपकों जानि के ध्यान मैं आनिक्, शुद्ध मुनी निरवान को जाही ।
आपकों नापक आप ही चेतन, चेतनता गुन ज्ञान को चाही ॥१३४॥
भोग सजोग ज्यु भोग के गेह ते, नेह तैं या भव तैं विरचै जे ।
भावहि आत्म आत्म ते वर, आत्म ज्ञान कला अरचै जे ॥
मोह की जेल को डेल कैं ते नर, या भव कैं सुख ना परचै जे ।
सम्यक् ध्यान हिये निज आनि कैं, कम को भ्रम सही खरचै ते ॥१३५॥
राग विना जन तित्त कसाय ज्यु, आपय सु चित प्रीति उतारै ।
आतुरता विनु चातुर ते नर, देह की सार कर दिन सारै ॥
दर्शन मोह विना चि मूरति, चेतन चेतन सुख सभारै ।
भोग सजाग को जोग करै नहीं, साधु सदा चित ज्ञान को धारै ॥१३६॥

गुन चेतन गुन कथन—सर्वथा तेवीसा

अतर तत्त्व विलोकि कीया जिम, भानु उदै मय वस्तु प्रकादी ।
गहै जग म जग रीति धरै नहीं, आप गुने बरी उज्जल भासै ॥
माह की नीद मैं धूमित चेतन, देखत स्वप्न भवादि उलामै ।
आप मैं आप ममाय रहे ध्रुव, शुद्ध निरजन भाव अभ्यासै ॥१३७॥

ज्ञान विलास कथन—सर्वथा तेवीसा

ज्ञान विलास अभ्यास किया विनु, कम को मम मदीउ बधारै ।
इन्द्रिय पंच प्रपंच कर चित्त, या रस प्यार अगार सभारै ॥

चिनमै चेतन खान दरशन भासमान,

अनुभव ज्ञान जान आन गुन हीन है ।

अक्षर त्रिगुण इंद्र देवचंद्र महानंद,

परम अमृत सन्त पद लयलीन हैं ॥१४७॥

दोहा-कुण्डलियां

ऐसो चेतन ब्रह्म वर समता नारि वियोग ।

चित्ति थिरता न लहै कहूँ, पावहि बहु विवि सोग ॥

पावहि बहु विवि सोग, जनम मरनादि वेद अति ।

भव भव भ्रमण भमत जहर जाहर जु विरह चित्त ॥

छिन भगुर गुनहीन गह्यो आत्म कर ए तन ।

निज प्रिय विनु बहु भर्म ब्रह्म वर ऐसो चेतन ॥१४८॥

आत्म समता वियोग—सर्वैया तेवीसा

मीत विहीन मै दीन भयो अति, मो चित्त सो थिरता न लहै है ।

यहै जग मै दिन राति निरंतर, अन्तर तँ थिरता न गहै है ॥

आत्म मीत कै सुख वियोग सु, दुख पर्यो सुख कुँज चहै है ।

सो सुख तो निज ज्ञान के आगम, जो कवहुँ पर कुँ न वहै है ॥१४९॥

पुन. आत्मा के विशुद्ध गुन कथन—सर्वैया तेवीसा

आथिरता थिरता समता लहि और के ठौर तो नाहि रहैगे ।

चित्त प्रवृत्ति को अति निवृत्ति मै, या गुन गान में ठीक धुलैगे ॥

जां लगि चेतनता मुझ मै थिर, त्यां लगि या गुन त्रय न भूलैगे ।

‘देव’ कहै निज देव को सेव सी, या भव देव को दूर ठिलैगे ॥१५०॥

१४८. P जह रज्जु > जहर जाहरनु क्षण > छिन, करण > कर ए ।

१४९ P मिन, ज्ञान > गान ।

चेतन समता प्रीति कथन

दोहा—चेतन चेतनता सहित, परम धरम गुन धान ।

पावे वर निरवान पद, समता प्रीति निधान ॥१५१॥

अथ कवि निज लघुता कथन—सबैया तेवीसा

मैं जिन आगम तै जु उत्तलि कैं, जो कछु बात विरुद्ध बखानी ।

सो तुम सोधि कैं भाखहु पडित, जाही की बुद्धि सुबुद्धि निसानी ॥

गहौ गुन भी सुनि कैं तुम सज्जन, शास्त्र को अथ सुतत्त्व पिछानी ।

बोधि सुबोधक ग्रन्थ गहै गुघ, डारि के सपति एह विरानी ॥१५२॥

अथ पूछ्य कवीसर के गुन वर्णन—सबैया इकतीसा

पाठक सु पाठही के निवारन आठही के,

हस राज राज पति नामे हस राज है ॥

साके कीन है कलश (श) त अडवीस जुत,

ज्ञान ही के जान अर दसन के राज है ॥

तत्त्व के पिछान जान ताही को निधान मान,

विमल अमल सब ग्रन्थ सिरताज है ।

आपा पर भेद कर पर ब्रह्म भाव भर,

शुद्ध सरधान घर नरतार्क काज है ॥१५३॥

दोहा—हिन्दू धम वीकानयर, कीनी सुख खोमास ।

तहा एह निज ज्ञान मे, कीयो ग्रन्थ अम्यास ॥१५४॥

अथ कवीसर के गुरु के नाम कथन—सबैया इकतीसा

वर्त्तमान काल धित आगम सकल वित्त,

जग मे प्रधान ज्ञानवान सब कहै है ।

जिनवर धमपरि जानै परनीन थिर,

और मत बात चित्त माहि नहि गहै है ॥

१५२ P सहित जाही की मोह निधानी, गहौ > गहै ।

१५३ P सलस > बलस । १५४ P तिहा ।

जिनदत्त सूरि वर कही जो क्रिया प्रवर,
 खरतर खरतर शुद्धरीति वहै है ।
 पुण्य के प्रधान ध्यान सागर नुमति हीके,
 साधुरंग साधुरंग राजसार लहै है ॥१५५॥

दोहा—सब पाठक सिर सेहरो, राजसार गुणवान ।
 विचरै आरज देश मे, भविजन छत्र समान ॥१५७॥

सदया इकतीसा

ताके शीस है विनीत परभीत सी वितीत,
 साधु रीति नीति धारी गुन अभिगम है ।
 आत्म ज्ञान धर्म घर वाचक सिद्धान्तवर,
 अति उपसंत चित्त ज्ञानवर्म नाम है ॥
 ताके शिष्य राजहस राजहंस मानसर,
 मुप्रधान उद्यमादि गुन गन घाम है ॥
 अंतेवासी देवचन्द कीनो ए गरंथ वर,
 अपनो चेतनराम खेनिवै कुं ठाम है ॥१५७॥

दोहा—कीनो इहाँ सहाय अति, दुर्गदास शुभ चित्त ।
 समझावन निजमित्त की, कीनों ग्रंथ पवित्त ॥१५८॥

अथ शास्त्र के श्रोता तिनके नाम

आत्म सभाव मिठुमल्ल कोपहारी दीठौ,
 भैरदास भेउदास मूलचन्द जान है ।
 ज्ञान-लेखराज वर पारस स्वभावधर,
 सोम जीव तत्त्व परि जाकी सरधान है ॥

ज्ञानादि त्रिगुणमत अध्यात्म ध्यान मत,

मूनतान थानवासी थावक सुजान है ।

ताकी धम प्रीति मन आनि के गरय कोनौ,

गुन परजाय घर जामै द्रव्य ज्ञान है ॥१५६॥

ब्रूहा—अध्यात्म शैली सरस, जे मानत सो जैन ।

ते चावेंगे ग्रन्थ यह, ज्ञानामृत रस लैन ॥ १६० ॥

गुन सञ्जन पहिचानि वं, हेय वस्तु करि हेय ।

चिदानन्द चिन्मय अगम, शुद्ध ब्रह्म आदेय ॥१६१॥

परमात्म नय शुद्ध धरि, शिव मारग एहीज ।

यहै मोहमं नवि भर्म, यही ग्रन्थ कौ बीज ॥१६२॥

सद्यत वचन

बोहा—विक्रम मयत मान यह, भय^० लेश्या^० के भेद ।

शुद्ध समय^{१७} अनुमोदिनै (१७६७) करि आश्रयको छेद ॥१६३॥

ता दिन या पोषी रची, बछ्पो अधिक सतोष ।

शुभ वासर पूरा भई, प्रथम जिनेसर मोष ॥१६४॥

अथ ग्रन्थ महिमा—सर्वथा इक्षतीति

गुण की निधान है कि मानो निरवन है कि,

साको जिन वान यामै अधिक उदार है ।

मानी मद भजन है मिथ्यामति भजन है,

गान दृष्टि अजन शिनाका गुगफार है ॥

राम की रमन है कि दुष्ट को दमन है कि,

परका वमा है अपार पारवार है ।

सन को सवाद है कि शुद्ध म्याह्लाद याम,

ओर का विपाद नाहि जानो उरहार है ॥१६५॥

दूहा—स्यादवाद युत द्रव्य पट्, जहाँ वन्यानी ठीक ।
नाम 'द्रव्य प्रकाश' यो, ज्ञान ग्रंथ तहकीक ॥१६६॥

पुनः ग्रन्थ महिमा—सर्वया इकनीसा

परनुं प्रतीत नाहि पुण्य पाप भीति नाहि,
राग दोष रीति नाहि आतम विलास है ।
साधक को सिद्धि है कि वृत्तवें कुँ बुद्धि है कि,
रीतिवें कुँ रिद्धि ज्ञान भान को विकास है ॥
सज्जन सुहाग दूज चंद ज्युं चढाव है कि,
उपगम भाव यामें अधिक उल्लास है ।
अन्य मत सौ अफंद वंदत है देवचंद,
ऐसे जैन आगम मैं द्रव्य को प्रकाश है ॥१६७॥

दोहा—ज्ञान ध्यान सुख थान यह, यहै मुगति को पय ।
जीवद्वार पूरन भयै, पूरन भयो गरंथ ॥१६८॥

इति श्री देवचंद्र मुनि विरचिते द्रव्य प्रकाश (ग्रज) भाषा ग्रन्थे
तृतीयं जीवद्वारं समाप्तम्



A प्रति पत्र १६ अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर प्रति नं० ८००६

B प्रति पत्र ५० महिमाभक्ति भट्टार, बड़ा उपाश्रय बीकानेर व० न० ५८.

ग्र० १०५२

P प्रति प्रकाशित श्रीमद्देवचन्द्र भाग २ बी.स. २४४५ वि.सं. १९७५ बादरा

श्री द्रव्यप्रकाश सार

प्रस्तावना-प्रारम्भिक वक्तव्य

(विदुषी आचार्यन श्री सज्जन श्रीजोमहाराज)

विश्व के समस्त दशन इन तीन आधारभूत प्रश्नों पर ही अवलम्बित हो निमित्त हुए हैं वे तीन प्रश्न हैं—(१) जगत् क्या है ? (२) आत्मा क्या है ? (३) परमात्मा क्या है ? प्रत्येक दार्शनिक ग्रन्थ में विशेषतया इन्हीं तीन की विशेष रूप से व्याख्या की गयी है इन्हीं का उत्तर देने का प्रयास किया है और जिज्ञासु की शकाओं का समाधान भी यथाशक्ति किया गया है ।

भारतीय दशनो में 'वार्त्ताक दान' के अतिरिक्त सभी दशन अध्यात्म-वादी हैं । उनका मुख्य लक्ष्य परमात्म स्वरूप बनना या ब्रह्मलीन हो जाना है । आत्मा के वास्तविक स्वरूप को समझ लेने और उसे प्रकट करने के लिए ही जगत् का स्वरूप भी समझना अनिवार्य है । जन दर्शन जगत् को पद्मद्रव्यमय मानता है । यह द्रव्य इस विश्व में सदा शाश्वत विद्यमान रहते हैं । इनमें से एक का भी कभी सवथा अभाव नहीं होता ।

भारतीय दशन पुराणाल से 'द्रव्य' की मायता दते रहे हैं । ब्रतिपय दान द्रव्य की 'पञ्चाध या तत्त्व' भी कहते हैं, कुछ उसे 'तत्' भी मानते हैं । शारांश कि विभिन्न दार्शनिक एक ही वस्तु को भिन्न-भिन्न नाम से अभिहित करते आ रहे हैं ।

भारत की प्राचीन भाषाया प्राकृत व संस्कृत में इस विषय पर रचित सर्वोत्तम ग्रन्थ अब भी प्राप्य हैं और उनका अनुशीलन सर्वत्र भाषाविश करते हैं । उपयुक्त दोनों भाषाया में गुम्फित प्रश्नों के अनुवाद, विश्व की कई भाषाओं में हो चुके हैं । जन दार्शनिक ग्रन्थ भी उनमें सम्मिलित है ।

जैन दर्शन मान्य पदद्रव्य निम्न है—

(१) चर्मग्निकाय, (२) अवर्गग्निकाय, (३) आत्मग्निकाय,
(४) काल, (५) पुद्गलग्निकाय, (६) जीवाग्निकाय ।

जैन आगमो व प्रवीणगण्यो मे ऽह्नी पर विमद विचार समुपनयन
है । मुख्य द्रव्य जीवाग्निकाय है—आत्मा है, उसी को नमस्तने के लिए अन्य
द्रव्यों को विनोपतया-पुद्गलग्निकाय को नमस्तने की आवश्यकता है, क्योंकि
आत्मा की अनन्तशक्ति पुद्गल के द्वारा आवरित है । उस आवरण का नवंधा
हट जाना ही 'मुक्ति' है ।

वैसे सभी दर्शनों का तथ्यमुक्ति है, पर जैनदर्शन की मुक्ति की
अपनी विनिष्टता है । प्रत्येक धार्मिक क्रिया का केन्द्रीय-तथ्य 'मुक्ति' है ।

अन्य द्रव्यों के साथ आत्म द्रव्य का सम्बन्ध कैसा है ? शाश्वत है या
अशाश्वत । सापेक्ष है या निरपेक्ष । हेय है या उपादेय । क्या हानिलाभ है ?
सम्बन्ध क्यों है ? कैसे छोड़ा जाय ? किन द्रव्यों से छूटना है ? किन में रहता
है ? इत्यादि विचारणाएँ दार्शनिक ग्रन्थों में की गयी हैं ।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'द्रव्यप्रकाश' भी जैन दार्शनिक विचारधारा का प्रति-
निधित्व करता है । द्रव्याणुनुयोग के महान् ज्ञाता १८ वीं सदी के विज्ञान्मन्त्र
प्रवर श्रीमद् देवचन्द्र गणिवर्य महोदय ने शास्त्रों का रहस्य मन्दबुद्धिजनहितार्थ
तत्कालीन जनभाषा में भी प्रकट किया है । वैसे उन्होंने संस्कृत व प्राकृत में
भी अनेक ग्रन्थों की रचना की है । परन्तु वे तदभाषा विज्ञान ही हृदयङ्गम
कर सकते हैं । समभाषी सन्त-पुरुषों की दृष्टि सर्वत्र सम होती है, सामान्यजन
की कल्याण भावना ने साधारण बोलचाल की भाषा—राजस्थानी, गुजराती
और तत् सामयिक कविजनादृत व्रजभाषा में भी उन्होंने गद्य व पद्य साहित्य
का सृजन किया । उन्हीं में से एक यह लघु रचना व्रजभाषा में गुम्फित है ।
इसमें दोहा, कवित्त, सवैया आदि छन्दों में द्रव्य स्वरूप का सुन्दर, सरस एवं
सरल वर्णन प्रस्तुत किया गया है ।

ग्रन्थ के प्रारम्भ का सार

भगवाचरण मे प्रथम मिद्ध परमात्मा को नमस्कार करने के साथ ही म्याद्वाद भाव को भी नमन किया है, वस्तु का यथायथ ज्ञान म्याद्वाद से ही होता है । म्याद्वाद द्वारा स्वपर का भेज्ञान कर स्व आत्मा को मुक्त किया जा सकता है । तदनन्तर अध्यात्म की महत्ता, मोह का विलास—जिससे आत्मा भोगों में आसक्त रह कर स्वयं को भूना हुआ रहता है । फिर पदद्वय— १ धर्म, २ अर्थ ३ आराध, ४ वाच ५ पुद्गल और ६ जीव का नाम मात्र धरा कर स्वयं की सजुता प्रकट करते हुए कहा है—

‘भूचर वामनगो मरुति विनु बहे ऐसो सम्धी करि भुजा मैं तो मेव चूला करमो, तस मैं अलपयुद्धि महा वृद्ध ग्रन्थ मण्ड्यो, पण्डित हेंगेग निज ज्ञान के गहर मा ॥

एवं पुत्ररा ज्ञान हीन पर भी सब का अज्ञमात्र नहीं । दम नम्रता ने ही उक्त दृग्गता में गवमा य और भवांतर में तीरकर या सबन बनाया है ।

‘द्रव्य प्रकाश ग्रन्थ के पठनाधिकारी सम्पन्नदत्तवान् व्यक्ति ही स्वीकृत किए हैं । फिर देशविरति आवश्यक बन होते हैं ? इमे बतलाया है । पुन ये प्रारम्भ में मिद्ध स्तुति कर चुके थे, अब दीप पदा—आरहत, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु की गतांग की है । ‘द्रव्यस्तवना से पुण्य धर्म और भावराग्य से बचनज्ञान की प्राप्ति होती है’ इसे स्पष्ट करने हुए श्रीमद् कहते हैं—

“द्रव्यस्तवना नाथ की, करतां पुण्य प्रकाश ।

आत्म के गुन गायतां, ध्वस्तज्ञान विस्तरा ॥”

प्रत्येक स्तवना में स्तवनीय का स्वल्प समझाना है । आगे धरितरि धारि बच हु बानाये हुए जो ज्ञानज्ञान धारित्र जहाँ जित गुणध्यान में पूर्ण होत है वही मिद्ध मुक्त नीच हैं । यह कर मिध्याहृदि—स्वपरगा का

अभाव, पुद्गलरमणता एकान्त पक्ष का ग्रहण, पुण्यावाक्षा, द्रुगतिगमन का भय, सद्गति की अभिलाषा आदि को हेय बताया है । प्रस्तुत द्रव्य प्रमाण में तीन अधिकार हैं जिनमें से प्रथम में धर्मान्तिकाय, अवर्मान्तिकाय, जाकाजान्तिकाय एवं कालइनचार द्रव्यों का वर्णन है । हमारे अधिकार में पुद्गलान्तिकाय एवं तीसरे में जीवास्तिकाय का वर्णन है ।

प्रथम अधिकार

फिर ग्रन्थारम्भ करते हुए ग्रन्थारचय देते हैं कि जिसमें छहों द्रव्यों का स्याद्वाद पूर्ण वर्णन है ऐसा 'द्रव्य प्रकाश' ग्रन्थ सम्यक्त्व धारण करने के लिए है । यहाँ शिष्य शका करता है कि अन्य धर्मान्तिकायादि पाँच द्रव्य जानने की क्या आवश्यकता है ? जो ज्ञान रूप और आदेश है, उस चेतन द्रव्य-आत्मा को जान लेना ही काफी है । उसके उत्तर में कहते हैं कि— यद्यपि चेतन द्रव्य अनन्त गुण वाला है, वही ध्येय तथा आदेश-ग्रहण योग्य है, किन्तु वह स्वयं को भुला कर भव-कोच में फँसा हुआ है, स्वयं का भान होने पर मुक्त रूप से विचरने लगता है । चेतन की भूल का कारण पर-जडपुद्गल की सगति है । इसी कारण चञ्चल 'बन कर भ्रमण करता' है, पर को जानने पर उसका त्याग किया जा सकता है । अतः दोनों को ही पण्डित जन बनाने हैं । भेदज्ञान इसी से होता है और वही मुक्ति का पथ है । इसी में ज्ञान व ज्ञेय है, भेदज्ञान बिना ध्यान व ध्येय की शुद्धता नहीं होती ।

निश्चय और व्यवहार, दोनों नयों से भेदज्ञान करना चाहिए, शुद्धनय निश्चय यथार्थ मत्तत्त्वस्वरूप का बोधक है, व्यवहार क्रिया उमने विपरीत और भेदज्ञान में कारणरूप न होने पर ज्ञान दृष्टि से त्यागने योग्य हैं, वस्तु को पहचान कर निजस्वरूप को शुद्ध करने का निश्चय कर लेना यह शुद्धनय का स्वरूप है; यही हमारा सम्यक् मित्र है; इसके जैसा और कोई मित्र नहीं । ऐसे रत्नत्रय के स्वामी और अन्तर्यामी देव अन्य कौन हो सकते हैं ? अर्थात् शुद्ध स्वरूप को प्राप्त सिद्ध भगवान् ही हैं, ऐसे शुद्धनय से ही हमारी स्थिर प्रीति है ।

जिसका आधार मात्र तत्त्वहीन क्रिया हो वह बाह्यलिङ्ग व्यवहार नय है। इसमें भी शुद्ध व्यवहार तत्त्वज्ञान युक्त क्रिया ग्रहण योग्य और अशुद्ध व्यवहार त्यागने योग्य है।

निश्चय शुद्ध नय की अपेक्षा यह आत्मा विषय निष्कलङ्क सद्भव है। अनादि अनन्त है और मात्र शोक्त है।

यही शिष्य का सदेह होता है, वह पूछता है—आपने व्यवहार नय को जानहीन पर और हेय बतलाया, फिर जैन शासन में इसका वर्णन व व्यवहार क्यों है ?

उत्तर—मैंने आत्म तत्त्व का जानने के लिए व्यवहार व निश्चय दोनों नयों का ग्रहण किया है। श्रीतीव्रकर भगवान् ने तीर्थ प्रवृत्ति निमित्त दोनों नय बतलाये हैं।

निश्चय लक्ष्य है, प्रवृत्ति व्यवहार मय होती है। शुद्ध व्यवहार द्वारा अशुद्ध आत्मा शुद्ध बनता है। भेदज्ञान पूरक प्रवृत्ति शुद्ध व्यवहार है। भेदज्ञान ही मुक्त होने में सहायक बनता है, भेदज्ञान के अभाव में मुक्त नहीं हो सकता। अतः भेदज्ञान की महत्ता बतनाते हुए कहते हैं—जैसे कोई भूपाश्मा रादव पान में लीन रहता हो, वह कर्मों के बंध को एक क्षणमान में उखाड़ फेंकता है, उसमें भेदज्ञान ही मुख्य कारण है। वह चतुर और विवेकशील है, स्वपर का नाता है। भय के चक्र में फँसा हुआ तो आठों प्रहर मात्र कमबख्त ही करता है और जाल में फँसकर ससार में भ्रमण करता रहता है। स्वपर भेदज्ञानवाला ज्ञान से पुष्ट आत्मा कमसमूह को अपने दोष आत्मप्रदेश में नहीं आने देता, अपने गुणों में निवास करते हुए गुण ज्ञान दानादि की रूप राशि का भास होता रहता है और वह स्वयं को आत्मप्रदेश रूप अलपट समझता है। भेदज्ञान रहित आत्मा अनादि काल से मेघमालाआ से आच्छादित सूर्य के मटल होता है। उसे अपने परमात्मस्वरूप का भान नहीं होता और स्वयं को पर-वश का वर्त्ता निश्चय से मानता रहता है। निश्चय नय की अपेक्षा से

आत्मा कर्म का कर्त्ता नहीं, ऐसा मद्गुरु के उपदेश ने जब आत्मा जान लेता है, तब वह अनादिकालीन मिथ्यात्व की निद्रा को त्याग कर जागृत हो जाता है, और चिन्तन करने लगता है— “मैं परब्रह्म-पुद्गल जड़रूप नहीं हूँ, न यह पुद्गलादि परब्रह्म मेरे हैं” ऐसा भाव-ज्ञान होने पर उसे बन्ध बँधे हो सकता है। अतः भली प्रकार जान कर व देव्य कर स्वयं के परमश्रेष्ठ पद को ही ग्रहण करो, उस पद के सम्मुख अन्य पद कभी आत्मा को अच्छे नहीं लग सकते। प्रमाण, निक्षेप, नय आदि का ज्ञान उस परमतेज के आगे अस्त हो जाते हैं, स्वरूप ज्ञान व भेदज्ञान ही मुक्ति का उपाय है।

‘आत्मा पर भाव का कर्त्ता नहीं’ यह विचार कैसे करें ? इसकी रीति बतलाते हैं—

“आठों कर्मों की प्रकृतियों का बन्ध, उदय, उदीरण, मत्ता, भोग आदि सभी कर्म सम्बन्धी कार्य पुद्गल-जड़-पररूप हैं। मैं तो इनसे पृथक् स्वतन्त्रोन्मय ज्ञानादि तेज से पूर्ण कर्म विमुक्त हूँ” यह चिन्तन आत्मा को स्थिर बनाने वाला है, यही आगे के पद्य में स्पष्ट किया है।

श्रीमद् उदाहरण देते हैं कि जैसे वायु के स्तम्भित हो जने पर मरोवर का जल स्थिर हो जाता है, वैसे ही जाता जीव कर्म को पृथक् समझता हुआ बन्ध मुक्त रहता है। अनन्तज्ञान के स्वामी आत्मा के साथ जो परभाव लगे हुए हैं उन्हें ज्ञानयोग में दूर करता है।

‘जो आत्मा स्वयम्भू चेतनस्वरूप, अमल अनन्त बलशाली, त्रैलोक्य का अधिपति है उसी का स्थिर होकर ध्यान करो और लोक से सम्बन्ध त्याग दो। इन प्रकार आश्रय का नाश होने पर संवर मय-स्वरूप बने हुए आत्मा को कर्म जो आत्मा के लिए अभोग्य हैं, उनसे कौन बाँधकर रख सकता है ? अर्थात् सवर भाव—त्याग सधम में रहने से कर्म नहीं बँधते। वर्णादि सभी शरीर के अंग हैं, उन शरीर का धारण कर्म वश होता है, जैसे स्फटिक के पीछे भाँति-भाँति के रंगीन पत्र लगा देने से स्फटिक वैसे रंग का दिखने

लगता है पर वास्तव में उससे पृथक् है । वैसे ही आत्मा भी कम संयोग से विभिन्न शरीरादि रूप एवं परपरिणति रूप भासने लगता है । यद्यपि आत्मा स्फटिक के समान उज्ज्वल निमल है, तथापि रागद्वेष मोह अज्ञान की उपाधि के कारण समार में रहता हुआ अज्ञान के वश विवर्त व्यग्र रहता है । फिर भी अपने ज्ञानादि स्वभाव का त्याग नहीं करता । जैसे स्वर्ण विविध भाँति के आभूषणादि का रूप धारण करता हुआ स्वर्ण रूप ही रहता है और वृष्णपक्ष में राहु के कारण चन्द्र कला घटती दिखती है, किंतु राहु से चन्द्रमा पृथक् है । वैसे ही पुद्गल के लग रहा हुआ आत्मा भी उससे वास्तव में पृथक् है ।

ससारी आत्मा का स्वरूप

ससारी आत्मा अज्ञानवश पर परिणति रागद्वेष माहू काम आदि आदि को अपनी और स्व की ज्ञानादि शुद्ध परिणति को पर मानता है, अतः रागी द्वेषी अहंकारी में है ऐसे विकल्प रूप मन से मिला हुआ कर्मों का बंध करके ससार में व्यग्रता पूर्वक भ्रमण करता रहता है । जन्म किसी को भूत लग जाय वह अपना भान भूल जाता है, वैसे ही यह जीव भी मोहभूत वश भान भूलकर कम बाँधता रहता है । पर संयोग से स्व को पर का कर्त्ता मानता है जब ज्ञान से स्व ज्ञानादि को अपना और पर रागादि भावा का पर मान लेता है और छोड़ देता है तब अकर्त्ता होता है ।

जगत् में पद द्रव्य हैं उनमें एक चेतन द्रव्य के अतिरिक्त सभी 'पर' हैय हैं, शुद्ध चेतना से मुक्त मात्र जीव ही सदा आदेय ग्रहणयोग्य हैं । धर्मास्तिकाय आदि पाँच जन्म और हय हैं, तथापि ज्ञेय तो हैं ही, अतः स्यावज्ञानमयपूर्वक उनकी स्पष्ट व्याख्या करता है । प्रथम द्रव्य का संज्ञन वतगाते हैं ।

द्रव्य लक्षण

जो सदा विद्यमान रहे, जिसमें उत्पाद नश्य और ध्रुव्य होता है, वह सद् का लक्षण है । जो मत् रूप है वह द्रव्य है । तत्त्वाथ सूत्र में भी "उत्पाद

व्ययध्रीव्ययुक्त सत्" कहा है। जो अस्तिकाय हैं, वे द्रव्य है। पाँच द्रव्यधर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और जीव अस्तिकाय है। इनमें से चार (पुद्गल के अतिरिक्त) अरूपी है। काल भी अरूपी है, यद्यपि वह औपचारिक द्रव्य है परन्तु छ. द्रव्यों में वह भी एक है।

चार 'द्रव्य-धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये अल्प हैं—अगण्ड भाव को धारण करते हुए विद्यमान रहते हैं। इनमें भी अस्तिकाय-धर्म, अधर्म व आकाश तीन पदों—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त हैं। काल अस्तिकाय न होने से उसमें उपर्युक्त त्रिपदी लागू नहीं पड़ती। ये चारों अपने-अपने गुणों से युक्त लक्षण सहित अपना कार्य करते हैं। एक दूसरे से पृथक् सत्ता वाले हैं। इन चारों से ही जीव विद्युक्त रहता है। इनसे लिप्त नहीं होता और स्व-सामर्थ्य से सिद्ध होता है।

काल को छोड़ तीन—धर्म अधर्म आकाश का स्वरूप वर्णन किया है। ये तीनों एक-एक स्कन्ध स्वरूप हैं अक्रिय हैं। इनमें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, असत्य प्रदेशी, लोकाकाश प्रमाण और अचल है। आकाशास्तिकाय अनन्त प्रदेशी लोकालोक प्रमाण गुण पर्यायवान् एव अक्रिय है। ये सभी यद्यपि जीव के समान ही स्व स्व गुणपर्याय लक्षणादि युक्त हैं; पर ज्ञेय हैं; ध्येय नहीं। ध्येय तो एक जीव है, जो लोकालोक का ज्ञाता है।

धर्मास्तिकाय का लक्षण

जो पुद्गल और जीव को चलने में सहायक है वह धर्मास्तिकाय है, वह स्वयं अचल व अक्रिय है। यहाँ शका होती है कि जो स्वयं अक्रिय है वह जीव व पुद्गल को कैसे प्रेरित करता है ? उसका समाधान जलमीन के दृष्टान्त द्वारा किया गया है। जैसे जल-जलचर जीव-मत्स्यादि को गमन में सहायक रूप है। जल बिना वे चल नहीं सकते; वैसे ही जीव तथा पुद्गल भी धर्मास्तिकाय के अभाव में गमन क्रिया नहीं कर सकते।

अधर्मास्तिकाय का लक्षण

जीव गुदगल की स्थिति ठहरने में सहायक अधर्मास्तिकाय द्रव्य है । जस मध्याह्न समय ग्रीष्मकाल में पथिक को छायादार वृक्ष निशाम लेने में सहायक बनता है, वैसे ही अधर्मास्तिकाय भी ठहरने में निमित्त या सहायक है ।

आकाशस्तिकाय लक्षण

अवकाशदान आकाश का लक्षण है । सारे अयद्रव्य स्व स्व गुण पर्याययुक्त इसी आकाश में रहते हैं ।

धर्मादि तीन द्रव्या के सामान्यतया आठ-आठ गुण हैं—

(१) अस्तिस्वभाव, (२) वस्तुस्वभाव, (३) द्रव्य स्वरूप, (४) प्रमेयत्व, (५) अगुरुलघुत्व, (६) संप्रदेशत्व, (७) अजीवरत्न और (८) अल्पित्व ।

तीनों के ये आठगुण जातीय हैं, इनमें कभी व्यभिचार अर्थात् मिलन एक दूसरे में गमन या मिश्रण अथवा विनिमय नहीं होता ।

गति, स्थिति और व्यवसाहना ये तीनों—धर्म, अधर्म व आकाश व प्रमश असाधारण गुण हैं । सत् साधारण गुण हैं, जो तीनों में समानरूप से हैं । द्रव्यों के गुण पर्याय का ज्ञान बड़ा महान विषय है, इसी को समझाने का प्रयास इस प्रश्न में है । गुण कह कर अत्र गुण के पर्याय बताते हैं ।

गुण में विचार होता पर्याय कहलाता है । पर्याय दो प्रकार के हैं—
(१) स्वभाव पर्याय, (२) विभावपर्याय । अगुरुलघु में विचार शुद्धपर्याय है । हानि वृद्धि रूप से उसके द्वादश भेद होने हैं—

१ अनन्त भाग हानि ।

२ असंख्यात भाग हानि ।

३ सख्यात भाग हानि ।

४ अनन्त गुण हानि ।

१ अनन्त भाग वृद्धि ।

२ असंख्य भाग वृद्धि ।

३ सख्यात भाग वृद्धि ।

४ अनन्तगुण वृद्धि ।

५. अमर्यात गुण हानि ।

५. असंख्यात गुण वृद्धि ।

६. सख्यात गुण हानि ।

६. नख्यात गुण वृद्धि ।

अमुरनघु गुण व उमके ये शुद्धपर्याय छहो द्रव्यो मे नमान ही हैं ।

विभाव पर्याय

स्वल्प स्थानगत भेद को लेकर घर्मादि द्रव्यों के विभाव-पर पर्याय कायन होता है । जैसे—आकाश की अपेक्षा से घटाकाश, पटाकाश, मटाकाश आदि ।

आकाश के मूल भेद दो हैं—(१) लोकाकाश, (२) अलोकाकाश । लोक अलोक के लक्षण—जहाँ छहो द्रव्य हों वह लोक है । जहाँ मात्र आकाश द्रव्य का ही उत्पाद, व्यय ध्रौव्य होता हो, वह अलोक है । अलोक सादि अनन्त है, वहाँ केवल आकाश रूप अजीव द्रव्य है । लोक में आकाश के असंख्यात प्रदेश हैं, उन्ही में गुणपर्याययुक्त छहो द्रव्य रहते हैं ।

शका—लोकाकाश के अमर्यात प्रदेश हैं । उन्हीं में अमर्यात प्रदेश वाले अन्य घर्मादि द्रव्य कैसे रह सकते हैं ? क्योंकि जीव अनन्त हैं । वे भी तो असंख्यात प्रदेश वाले हैं और पुद्गल द्रव्य के सूक्ष्म अणु लोकाकाश व अलोकाकाश प्रमाण अनन्त हैं तथा काल की भी समय-समय अनन्त वर्तना है । इन सब का आधार लोकाकाश तो मात्र अमर्यात प्रदेश वाला है, घर्मादि पाँच ही आवेय हैं जिनमें दो अनन्त हैं । इनने छोटे स्थान में उन सबका समावेश कैसे हो सकता है ?

समाधान—एक पात्र जल से भरा हुआ है, उसमें तदुचित शर्करा डाली जाय वह गम जाती है, नमक की एक डली डाली जाय, वह भी उसी में मिल जाती है, फिर उसी में राख भी डाल दी वह भी जम गयी, पुनः सूइयो का समूह लेकर उसी में एक-एक करके अत्यन्त समीप रूप से खोस दी जाय इन सभी का जलपात्र में समावेश हो जाता है । सभी पदार्थ पृथक्-पृथक् सत्ता के धारी हैं, फिर भी सर्व का समावेश जल में हो जाता है, वैसे ही

सोनानाश में अवगाहगुण की शक्ति ने कारण व प्रपात्राद्र या का भी समावेश हो जाता है ।

जैन दर्शा की मायना ने विपरीत अत्र दर्शनियों की मायता है । व धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय को नहीं मानते । उनका कहना है कि दोनों द्रव्य कल्पानामात्र हैं । वास्तव में हैं नहीं क्योंकि ये प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द प्रमाण से ग्रस्त ही नहीं है । जैन दार्शनिक कहते हैं—य कालानिक नहीं, आत्मरूपित आगम व अनुमान से भी सिद्ध हैं, वास्तविक व निरः हैं । जैन अनुमान से इन्द्रिय व मनगुह्य भाव भी संसार में सत्य हैं । वम ही धर्मादि भी जीव पुद्गल की गति व स्थिति में सहायक होने से सत्य हैं । इनके बिना गति व स्थिति नहीं हो सकती ।

आधुनिक विज्ञान भी गति में सहायक 'ईथर' नामक तत्व स्वीकार करता है । जैसे दधि में घृत दिग्गता नहीं, पर है अवश्य, वसे ही धर्मादि अस्वी होने से दिव्यन नहीं, पर निश्चित रूप से जगत् में विद्यमान है ।

फाल्गुनी कहते हैं कि गति स्थिति काल व आधीन है । बुद्ध (बौद्धा) की मायता है कि एक द्रव्य दो क्रिया नहीं कर सकता । तुम्हारे मतानुसार फाल्गुन नव पुरातन क्रियाएँ करता है । व दो क्रिया अवेला काल नहीं कर सकता ।

पञ्चभूतवादियों की मायता है कि जल अग्नि, वायु आदि एक गति, स्थिति आदि सभी वायु पृथ्वी के ऊपर होने से पृथ्वी के आधीन हैं । बुद्ध का उत्तर है—वायु आदि भूत तथा जीव और जड इन सब की शक्ति पृथक् पृथक् है, व गति स्थिति में सहायक रूप नहीं बनते । उत्तर—जीव और पुद्गल की गतिस्थिति में धर्मास्ति व अधर्मास्ति द्रव्य सहायभूत हैं । जीव इनका पाता भी है, वपाकि वह ज्ञानगुण युक्त है । अतः धर्मास्ति व अधर्मास्ति व दो द्रव्य जिनके बिना गति स्थिति नहीं हो सकती, अविवायव्य से लाक्षाश में विद्यमान रहते हैं ।

कालद्रव्य के लक्षण

इसकी परिणति वर्तना स्वरूप है और यह नवीन को जीर्ण बनाने रूप क्रियाशील रहता है, नवीन वस्तु समय व्यतीत होने पर जीर्ण होती है, यह प्रत्यक्षरूप से प्रमाणित है, अतः काल का अनाधारण लक्षण भी यही है ।

कालद्रव्य भी यद्यपि उपर्युक्त अस्ति आदि आठ गुण युक्त है, तथापि अप्रदेशी और समय पृथक्-पृथक् होने से कायरूप नहीं है । वर्तना के हेतु भूत ये विशेषगुण जिनेश्वरदेव ने काल के भी कहे हैं । अगुणलघुत्व के पर्याय न्व पर रूप से उममे रहते हैं । वर्तना स्वपर्याय और सावनिष्ठा, मूर्त्त, दिन रात्रि आदि अनन्त पर पर्याय है । इन्हीं में उत्पाद व्यय और ध्रौव्य होता है । काल द्रव्य अनन्त समय वाला है । वर्तनारूप से नरक्षेत्र—अढाईद्वीप में वर्तता है ।

शका—आपने काल की वर्तना नरक्षेत्र प्रमाण बतलायी और “उत्पादादि त्रिपदी समस्तलोक में होती है और समय-समय होती रहती है” यह विपरीत कथन समझ में नहीं आता है, अतः कृपया स्पष्ट समझाइये ?

समाधान—हम प्रमाण का पक्ष लेकर ही ऐसा कहते हैं । नरक्षेत्र में भी त्रिपदी तो काल की होती है, साय-साय सूर्यचन्द्र के कारण दिन रात्रि आदि का भी समयविभाग होता है वर्तना इसे ही कहा है । उत्पाद और ध्रौव्य शाश्वतरूप से छहों द्रव्यों में होता है, ऐसा जानियो—सर्वज्ञ सर्वदर्शी केवलज्ञानियो ने अपने ज्ञान दर्शन से जाना देखा है; अतः वैसा ही उपदेश में कहते और गणधर भगवान् उसी अर्थ को सूत्ररूप गूँथ कर आगमरूप से प्रकट करते हैं । उसी आगमप्रमाण से हम कहते हैं । त्रिकालवर्ती सभी ज्ञानिजन-सर्वज्ञ-काल को सदा अनन्त समयात्मक देखते हैं ।

किसी अन्य आचार्य का कथन है कि कालद्रव्य अनन्त नहीं असंख्यत है रेणुक है स्थिर है, लोकप्रदेश परिमित है, एक-एक रेणुक में अनन्त अनन्त

'समय' प्रकट होते रहते हैं । समय पृथक् पृथक् हैं और कभी मिलते नहीं अतः अस्तित्वात् नहीं कहनाते । अनन्तकाल व्यतीत हो गया उतना ही अनन्त अनागतकाल है । वह अप्रदेशात्मक और परिणामी है ।

वास्तविक काल स्वरूप

काल को मनुष्य क्षेत्र परिमित व्यवहार में कहा है । निश्चय से पाँचों द्रव्य धर्मास्तित्वात्, अधर्मास्तित्वात्, आकाशास्तित्वात्, पुद्गलास्तित्वात् और जीवास्तित्वात् यत्ना ही कालस्वरूप है, काल अस्तित्वात् ही नहीं है, तो सद्रूप न होने से उसमें उत्पाद ध्वय ध्रौव्य भी नहीं होता, अतः काल औपचारिक द्रव्य है । वास्तविक द्रव्य पाँच ही हैं ।

यद्यपि धर्मादि पाँच द्रव्यों में निपदी होती रहती है, अगुरुलघुत्व पर्याय भी चारों में ही जीव के समान हैं, य भी अल्पी, अक्षुण्ड, अज, अनादि, अनन्त, सद्रूप एक दूसरे से सदा अनमिल और लोक प्रमाण हैं, संप्रदेशी हैं । इत्यादि जीव समान गुणवाले होने पर भी अजीव जड होने से ध्येय नहीं हैं । ध्येय तो मात्र ज्ञान चतनावाद् जीव है, यही अनन्तत्रिगुण—ज्ञानदशनवारित्राद्या, देवों में चन्द्रमा के समान और ब्रह्मज्ञान का निष्ठा होने से उपादेय है ।

॥ इति प्रथम अधिकार ॥

द्वितीय अधिकार

अल्पी और जड ऐसे चार द्रव्यों—धम, अधम, आनास और काल का वर्णन प्रथम अधिकार में किया गया । अत्र अल्पी जड पुद्गल को सक्षय से वृत्तिलाते हैं । इससे पूव पुद्गल संयोग से आत्मा कैसा और क्या बन जाता है ? इसे कहते हैं—

जिस प्रकार समुद्र का जल, तीव्र वायु के योग से अत्यन्त ऊँचा उद्यनने लगता है, मन्दवायु से भी छोटी तरङ्गावलि युक्त चञ्चल ही रहता है । रचमाण भी कभी स्थिर नहीं रहता, वैसे ही यह चेतनराज भी यद्यपि स्वरूप

से अमन म्यिर अण्ड रूप में अनन्त ज्ञान गति युक्त है, तथापि कर्मप्रेरित मोह के पवन से देहादि में ममत्व भाव धारण करना दृष्टा धृष्ट होना रहता है ।

जिस प्रकार मृत्तिका जल संयोग से घट दीपकारिण्य गुन्दर आकार धारण करके तद्रूप दृष्टि गोचर होती हुयी तत्तन् कार्य करती दृष्ट मृत्तिका भी ही है । उसी प्रकार अष्ट कर्मजल के संयोग से आत्मा भी चार गति रूप संसार में विविध प्रकार के शरीर धारण कर गुप्त दुःख भोगना दृष्टा भी अण्ड चेतनत्व युक्त सदा ध्रुव नित्य है । अपने ज्ञानादि गुणों सहित आत्मा अमल अण्ड रूप को जब पूर्ण रूपमें रत्नत्रय की आराधना द्वारा प्रणत कर लेता है तब वही मिद्ध कहलाता है । उस मिद्ध स्वरूप को नमस्कृत करके श्रीमद् देवचन्द्र गणि महोदय कहते हैं कि ऐसे आत्मा के अतिरिक्त मोक्ष का साधन अन्य धर्मादि अचेतन द्रव्य नहीं हो सकते ।

पुद्गल द्रव्य-पूरणगलन स्वभाव वाला अस्तिकाय और मूर्तरूप है, स्पर्श वर्णगन्ध और रस स्वरूप है । गुण पर्याय युक्त है । उसमें भी आठ गुण हैं— १. अस्तित्व २. वस्तुत्व ३. द्रव्यत्व ४. प्रमेयत्व ५. अगुरुलघुत्व ६. मप्रदेशत्व ७. अजीवत्व और ८. तपित्व । ये सामान्य गुण हैं । पूरणगलन विशेष गुण है । पङ्गुण हानि वृद्धि रूप मूल पर्याय है । द्व्यणुकादि स्कन्ध रूप परपर्याय हैं । अणु अनन्त हैं प्रत्येक अणु में एकवर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श ये ५ गुण हैं । ये भी मूलपर्याय स्वरूप हैं । अणु परिणामी होने से उसमें अन्य अणु से मिल जाने की शक्ति मदा वर्तमान रहती है । द्व्यणु त्र्यणु ४, संख्यात अणु, अनंख्यात अणु और अनन्त अणु के स्कन्ध बन सकने की शक्ति और सामर्थ्य होने व बनने से अस्तिकाय कहलाता ऐसे पुद्गल द्रव्य सम्पूर्ण (लोकालोक) आकाश प्रदेश जितने हैं । चोपड स्तेन के सारिपाश के संस्थान (आकार) वाले अनन्त स्कन्ध हैं । वे पुद्गल द्रव्य, अणु रूप एवं स्कन्ध रूप हैं । स्कन्ध भी दो प्रकार के हैं—जीवगृहीत, जीव अनगृहीत । जीवगृहीत अणु कर्मणादि कहलाते हैं, वे अणु स्कन्धादिरूप हैं ।

मुक्त अणु अनन्त हैं, वे भी मिलकर स्वप्न बन जाते हैं। स्वप्न रूप को दृष्टे विगिर कर अणुरूप वा जात हैं। इस प्रक्रिया को पूरण—गलन कहते हैं। ऐसा कहन वाले कि अणु अनन्त हैं, स्वप्न अनन्त नहीं, व शास्त्र पात्र हीन मूर्ख हैं। यदि एमी मान्यता है तो 'द्रव्य पुद्गल' परामर्शन फिर कसे घट सक्ता है ? अणु की जीव के समान ही गति है और स्थिति तो अनन्तकाल की अर्थात् नित्य है। अब स्वप्न का स्वभाव कहते हैं—छाया, आनप, तेज, अपकार, प्रभा, उद्योत, शब्द, वण, गन्ध, रस, और स्पश ये पुद्गल के रूप हैं। पुद्गल का स्वभाव मिलना, विगिर जाना, सधु या स्थूल रूप पारण करना आदि है। य सब स्वप्न रूप हैं। इनमें से भी किन्नेक इन्द्रिय ग्राह्य और कितनेक इन्द्रिय अप्राप्त हैं। स्वप्न तीन प्रकार के हैं—सद्ययात अणुयामे, अगद्ययात अणु यामे और अनन्त अणुयामे। ये सब अवतन जड साहीन और ह्य तथा नये हैं, उपादय तो मात्र चेतन स्वरूप ज्ञाता जीव ही है।

कम प्रकृति विवरण १ बन्ध हेतु

जीव के कम कय कसे हुआ है ? अब यह बतलाते हैं—अनादिकाल से आत्मा कम समय के कारण विध्यात्व भाव में मीन बना हुआ है, अर्थात् आत्म भाव को विस्मृत कर पुद्गल में रमण कर रहा है, अत अविरति म स्त्रीपादि कथाय मुक्त ही प्रवृत्ति करता रहता है इन सबक उत्तर भेद मत्तायन (५७) हैं—पंच विध्यात्व—१ आभिप्रहित २ अनाभिप्रहित ३ आभिनिवेशिक ४ साशयिक और अनाभोगि (इहा विभूत अय अयत्र कने, यही तार मात्र लिखना है अत तामनिर्देश ही किया है)

बारह अविरति—१ सार्गेन्द्रिय अविरति २ रमनेन्द्रिय ३ घ्राणेन्द्रिय ४ चक्षुरिन्द्रिय ५ श्रोत्रेन्द्रिय ६ पा की अनुभ प्रवृत्ति ७ पृष्ठीकाय ८ अर्वाय ९ तेजस्काय १० वायुकाय ११ वनस्पति और १२ पमपाय की हिता म प्रवृत्ति।

पञ्चीन तपाय—१. अनन्तानुबन्धी क्रोध, २. अनन्ता० मान ३. अनन्ता० माया, ४. अनन्ता० लोभ, ५. अप्रत्यादयानी क्रोध, ६. अप्रत्या० मान, ७. अप्रत्या० माया, ८. अप्रत्या० लोभ, ९. प्रत्यादयानी क्रोध, १०. प्रत्या० मान, ११. प्रत्या० माया, १२. प्रत्या० लोभ, १३. संज्वगन क्रोध, १४. मज्ज० मान, १५. संज्व, माया, १६. मज्ज लोभ एव १७. हान्य, १८. रति, १९. करनि, २०. भय, २१. शोक, २२. जुगुप्सा, २३. रसोवेद, २४. पुरवेद, २५. तपुनक वेद ।

पनरह योग—चार मनो योग—१. सत्य, २. अमत्य, ३. मिश्र, ४. व्यवहार मन । चार वचन योग—५. मत्य, ६. अमत्य, ७. मिश्र, ८. व्यवहार वचन । सात काय योग—९. औदारिक, १०. औदारिक मिश्र, ११. वैक्रियक, १२. वैक्रियक मिश्र, १३. आहारक, १४. आहारक मिश्र, १५. कामण ।

इन सत्तावन हेतुओं से जीव, कर्म बांधता है । वन्व चार प्रकार का है—१. प्रकृति वन्व, २. स्थिति वन्व, ३. अनुभाग-रसवन्व, ४. प्रदेश वन्व । प्रकृति का अर्थ स्वभाव है, स्थिति का काल निश्चय, रस-शुभाशुभ । कर्मदल का संचय प्रदेश वन्व है । इन्ने मोदक के दृष्टान्त में समझना चाहिये—जिस पदार्थ का मोदक बनाना है, वह प्रकृति है, कर्म प्रकृति मूलतः आठ होती हैं । उत्तर भेद एक सौ अट्ठावन (प्रकृति) होते हैं । इनका वन्व होना प्रकृति वन्व है । मोदक के ताजा गुणकारी या अवगुणकारी रहने का समय स्थिति वन्व है । शुभाशुभ विपाक देने की शक्ति रसवन्व है, जैसे मोदक की चाशनी के अनुसार मोदक में मीठापन या कटुत्व होता है । कर्मदल का संचय कम अधिक रूप में होना प्रदेश वन्व है, जैसे मोदक का छोटा बड़ा होना ।

कर्म प्रकृतियाँ

कर्म की मूल प्रकृतियाँ—१. ज्ञानावरणीय कर्म, २. दर्शनावरणीय कर्म, ३. वेदनीय कर्म, ४. मोहनीय कर्म, ५. आयुर्कर्म, ६. नामकर्म, ७. गोचकर्म, ८. अन्तराय कर्म ।

१ ज्ञानावरणीयकर्म—यह आत्मा के नागुण की आच्छादित करता है। जस नेत्रो पर पाटा बांध लिया जाय तो दितायी नहीं पड़ता। इसके पाँच भेद हैं—मतिनागावरणीय कर्म, श्रुत नानावरणीय, अवधिनागावरणीय मन पर्यवसानावरणीय, केवलज्ञावरणीय। इनके २ भाव हैं—धामिक व धायोपशमिक। सवधा आवरण हट कर ज्ञान का पूर्ण प्रकट होना अर्थात् केवलज्ञान होना धामिक भाव और अन्य बार ज्ञान होना धायोपशमिक भाव हैं। बाध न से कुछ क्षय और कुछ उपशम हो, यह धायोपशमिक भाव है।

२ दशानुगुण की आच्छादित करने वाला दानावरणीय कर्म है, इसे प्रतिहार के द्वारा त से ममपना चाहिये। जस राजा के दान करने की इच्छा वाले की प्रतिहार द्वारापाल रोक लेता है वैसे ही आत्मा की दशानुगुण की यह कर्म रोक लेता है। इसके नव भेद हैं—चक्षुदानावरण, अचक्षुदानावरण अवधिदानावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रलता, शयानादि। इनके तीन भाव हैं—धामिक भाव, धायोपशमिक भाव और धियिक भाव। केवलदर्शन सम्पूर्ण कर्म का क्षय होने से व अन्य तीन—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन धायोपशम होने से होने हैं। मोहोदय में कारण रूप है।

३ वेदनीय कर्म आत्मा के अपावाय गुण की हरण करने वाला, माता व अमातारूप है। इसमें भी दो भाव हैं, मधुलित अति के जता है। माता मधुरूप व अमाता अति—तलवार स्वरूप है।

४ मोहनीय कर्म दो प्रकार का है—द्वानिमोहनीय, चारित्रमोहनीय। दर्शन मोहनीय व तीन भेद हैं—मिथ्यात्व मोहनीय, मिथ्यमाहनीय, मध्यमत्व-मोहनीय। इनका स्वभाव मध्य मदिरा के जता है। मिथ्यात्वमोहनीय का स्वरूप—मग्न उद्यम आ प्राणी शरीर में गति मग्न वाता इसका विद्वान्म करत वाला अनीति का प्रेमी, पुण्यपल का अभिलाषी, जीवाजीयनिवन्हीन, स्वपर न अपात, बाह्य सपन, तप, अहिता का पानन, आंतरिक ज्ञान व भक्ति न धर्म हाता है। यह मिथ्यात्व आत्स्वरूप की कृपा से ही किसी

प्राणी का दूर होता है । प्रायः सम्पूर्ण विश्व के अधिकांश जीव इसी मिथ्यादर्शन वाले हैं ।

मिश्रमोहनीय—इस दृष्टि वाले जीव वीतरागदर्शन पर न राग रगते हैं न द्वेष । जैसे नारियल द्वीपवासी जीव अन्न न मिलने में नारायित्व ही मानते हैं, परन्तु उनका अन्न पर द्वेष या राग नहीं होता । वैसे ही ये जीव भी होते हैं ।

सम्यक्त्व मोहनीय—इस दृष्टि वाले जीव सम्यग्दृष्टि होते हैं । सम्यक्त्व के उपशम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्य इन पांच लक्षणयुक्त, शरीरादि परभावों से विरक्त, उत्तमनीतियुक्त, ज्ञान दृष्टि सम्पन्न, निःशक्ति-त्वादि दर्शन के आठ आचार के पालक, अतरंग व बाह्य शान्तिवान्, उन्मिद्य सुखों से विमुक्त, मुक्ति के सम्मुख रहते हुये, अपनी ज्ञान दृष्टि में वर्तने हुये, पापों का नाश करने वाले देवगुरु धर्म के प्रति प्रशस्त राग युक्त होने में सम्यक्त्व मोह वाले होते हैं । मिथ्यात्वदलित तो है, पर उज्ज्वल होते हैं । सर्वधादनिकों का नाश न होने से ये क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन वाले हैं । पवित्र श्रद्धायुक्त रुचि वाले होने पर भी कभी २ अंकादि ५ अतिचार लग जाते हैं, अतः क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता । क्षायिक में दर्शन मोह का सर्वथा नाश हो जाता है ।

चारित्रमोहनीय—इसके २५ भेद हैं । बन्ध के सत्तावन भेदों में २५ कषाय के नाम आगये हैं । इस कर्म के उदय से जीव को देश या चारित्र नहीं आता ।

५. आयुः कर्म के चार भेद हैं—नरकायुः तिर्यगायुः मनुष्यायुः देवायुः । इसको कारागार के समान बतलाया है । यह भव विपाकी कर्म है, अर्थात् एक भव में भोगा जाता है । जिस गति का आयु बँधता है, उसमें उतने काल तक जीव को रहना पड़ता है, जैसे कैदी को कारागार में ।

६. नामकर्म के ६३ या १०३ भेद हैं । इनमें १४ पिंड प्रकृति कहलाती है ।

४ गति—नरक, त्रियम्, मनुष्य, देव ।

५ जाति—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय ।

५ शरीर—औत्तारिक, वैक्रियक, आहारक, तजस् और कामण ।

३ अगोपात—औत्तारिक, वैक्रियक, आहारक ।

१२ धातु—१ औदारिक औदारिक २ औदारिक तजस् ३ औत्तारिक कामण ४ औत्तारिक तजस् कामण, ५ वैक्रियक वैक्रियक ६ वैक्रियक तजस् ७ वैक्रियक कामण ८ वैक्रियक तजस् कामण ९ आहारक आहारक १० आहारक तजस् ११ आहारक कामण १२ आहारक तजस् कामण १३ तजस् तजस् १४ तजस् कामण १५ कामण कामण ।

५ सधातन—औत्तारिक, वैक्रियक, आहारक, तजस्, कामण ।

६ सधमण—वज्रधमनाराच, ध्रुवधमनाराच, नाराच, अष्टनाराच नीतिना, सवात या छेदछा ।

६ सस्थान—समस्तुरम्, यमोच, सादि, धामन, वृद्ध, वृद्ध ।

५ धन—वृष्ण गीत, रक्त, पीठ, दहन ।

२ गन्ध—मुरमि-मुग्ध, दुरमि-दुग्ध ।

२ रम—तित्त वट्ट, वपाय, अम्न, मपुर ।

२ रम—वट्टार, वृष्ट गुरु, लघु शीत, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष ।

४ अनुपूर्वो—नरवानुपूर्वो, त्रियवानुपूर्वो, मनुष्यानुपूर्वो, देवानुपूर्वो ।

२ विहायोगति—शुभविहायोगति, अशुभविहायोगति । यौ १४ ने ७५ उत्तर भेद ही है ।

८ आठ प्रत्येक प्रवृत्ति—वराधान, उच्छ्रवात, अतिर, उद्योत, अनुव लघु तीक्ष्णर, निर्माण, उपधान ।

१० प्रत्येक—पस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, तीक्ष्ण, मुरम आदि, यश कीर्ति ।

१० स्थावरदण्ड—स्थावर, गूम, अत्यन्त, मायारण, अस्थिर, अनुव दोर्भाग्य, स्थावर आदय, अदण्ड कीर्ति ।

पाँच बन्धन मानने से ६३ और १५ दान्न निने पर सर्व १०३ भेद है ।
सत्ता उदय उदीरणाबन्ध आदि कर्मग्रन्थादि से जानना चाहिये ।

७ गोत्र कर्म—दसके दो भेद हैं—उच्चैर्गोन, नीचैर्गोन । यह आत्मा
के अगुरुलघु गुण को आवन्ति करना है ।

८ अन्तराय कर्म—इसके पाँच भेद हैं—दानान्तराय, नामान्तराय,
भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और धीरान्तराय । यह अनन्त शक्ति का
रोधक है ।

आठ कर्मों में प्रत्येक की उत्कृष्ट स्थिति—	जपन्व स्थिति
ज्ञानावरणीय कर्म की—२० तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम ।	अन्तर्मुहूर्त्त
दर्शनावरणीय कर्म की—तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम ।	अन्तर्मुहूर्त्त
वेदनीय कर्म की—३० तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम ।	१२ मुहूर्त्त
आयु कर्म की—तेतीस सागरोपम	अन्तर्मुहूर्त्त
मोहनीय कर्म की—नत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम	अन्तर्मुहूर्त्त
नामकर्म की—बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम ।	आठमुहूर्त्त
गोत्र कर्म की—	”
अन्तरायकर्म की—तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की ।	अन्तर्मुहूर्त्त

रस बन्ध—उत्कृष्ट रस सर्वधाति प्रकृति का होता है । देशधाति का
मध्यरस, अधाति का हीन रस होता है । वर्णगन्ध और स्पर्श में रस
अनन्त गुण होता है । जब तक रस अनन्त नहीं होता तब तक कर्म का
बन्ध नहीं होता ।

प्रदेश बन्ध, अष्ट वर्गणा—आदारिक वर्गणा, वैक्रियिक वर्गणा, आहारक
वर्गणा, तैजस वर्गणा, भाषा वर्गणा, स्वामोच्छ्वास वर्गणा, कामगन्धर्वगणा । मान्य
च अग्राह्य दोनों प्रकार की अनन्त वर्गणाएँ हैं । विस्तार अन्य ग्रन्थों में है;
यहाँ नाम निर्देश मात्र है ।

आत्मा मोहवश ने पाश में आग्रह हुआ आठों बमों का वध करता है। सर्वभूत आयुष्कर्म ने दलित, उनसे अधिक नाम व मोक्ष बम के, उनसे अधिक जानाशरीर्य दानावरणीय और अन्तराय के उनसे अधिक मोहनीय बम के और उससे भी अधिक वेदनीय बम के दलित का वध करता है। सत्य में कम अणुदत्त आत हैं। मरम गिरस भोजन के दृष्टांत से वेदनीय समझना चाहिये।

समघाति परमाणु अधिक और देशघाति परमाणु घाट बाधता है। जीव की अनन्त शक्ति से परिणामा क अनुसार इनका विभाजन सत्पण हो जाता है। इस प्रकार बहुत से बम दला से विविध प्रकार का बमवध होता रहता है। फिर भी आत्मा के आठ रवच प्रदश मवदा मुक्त रहते हैं और दोष प्रदो को चारो ओर से वधित कर प्रत्येक प्रशो व साथ अनन्त अनन्त कामण वगणा बधी हुयी है।

यद्यपि पुद्गल प्रकट रूप से स्पष्ट दिवायी पन्न हैं और अतन मुक्त रहता है। इसका कारण है पुद्गल भी हैं और जीव अशी है, फिर भी पुद्गल नाता नहीं पद अवेनन है, जीव जनन जाने से जाता है वह लोका लोका का जानने की गान शक्ति से मयप्र है और नेता की भी अनन्त शक्ति मुक्त है विष्णु अनादि बाल से बमों में बढ होत पर भी निवपयनय की दृष्टि से मुक्त और व्ययहारमय की अपेक्षा से बमवद है। आत्मा व तीव्र पुन शान दान चारित्र्य मदा आगव है और नात का समुद्र है। अने विष्णु स्वभाव को बभी तही छोड़ता।

“ इति द्वितीय अधिकार ”

तृतीय अधिकार

(श्रुत)

पुद्गल द्रव्य का वान कर जब म ।। म जोरद्रव्य का वान करत ३ । तीव्र वान जयात् अनात यतवात और अनाया म जो म । चेतारात् और जानादि गुणों की सम्पत्ति में मयान रहता है, पर पुद्गल में मयदा

भिन्न अलिप्त रहता है, वह जीव है। वह न कर्म का कर्त्ता है न भोक्ता, रसात्मकता से युक्त, असदय प्रदेष्टावात्, चेतना में रमण करने वाला, अग्नि आदि छः प्रकार के गुण युक्त, परभाव—पुद्गल—विषय कषायादि में भावित होने पर भी सदा स्वभाव में ही निवास करने वाला, स्व पर भाव और भव-संगत की भीति से मुक्त, अनन्त आनन्दमय, सत्, सत्तायुक्त, अक्षय, रत्नमय का न्वासी और देवी में चन्द्र के समान है। (यहाँ श्रीमद् का रवनाय युक्ति निवेदित है।)

जीव द्रव्य के चार पर्याय होते हैं—स्वभाव, विभाव, द्रव्य और व्यञ्जन। अगुरुलघु गुण में विकार-स्वभाव। पद्मगुण हानिवृद्धि रूप द्रव्य, नर नारक तिर्यग और देव विभाव पर्याय हैं उसे परपर्याय कहते हैं मतिज्ञानादि रूप व्यञ्जन पर्याय हैं अर्थात् इनके द्वारा चेतना की व्यक्ति होती है पूर्ण स्वभाव द्रव्य और व्यञ्जन इन पर्यायों में युक्त जीव चरित्तरीय की विभाजनून अवगाहना में युक्त वाला निद्रावस्था (मुक्ति) में रहता है। ज्ञानादि अनन्त चतुष्ठा व्यक्त हो जाने से पूर्ण व्यञ्जनपर्याय, सदा स्वभाव पर्याय, मात्र आत्म द्रव्य स्वरूप बन जाता है। वहाँ स्वरूप का कर्त्ता भोक्ता और न्वासी वतत्तर अनन्तकाल पर्यन्त उसी रूप में रहता है।

प्रश्न—एक द्रव्य एक समय में एक ही क्रिया का कर्त्ता है। दो द्रव्य एक क्रिया नहीं कर सकते और न दो क्रिया एक द्रव्य करता है। यहाँ शिष्य प्रश्न करता है—कि अशुद्ध निश्चय की अपेक्षा से आत्मा रागादि नमूह से व्याप्त होकर तद्रूप बनकर कर्म का दन्ध करता है, उसका उदय होने पर व्यवहार से वेदक स्वभाव ग्रहण कर गत समय में की गयी कर्म दन्ध रूप क्रिया का फल भोगता है। कृत कर्म भोगते हुए नवीन का दन्ध करता है। तब एक समय में दो क्रिया एक ही जीव द्रव्य कैसे करता है? इस विषय में मुझे सन्देह है, अतः कृपया इसे स्पष्ट समझाइये ?

उत्तर—शुद्ध निश्चयन की अपेक्षा से आत्मा स्वभाव का ही कर्त्ता है। ज्ञान स्वरूप वीतराग वीतद्वेष होने पर गुणराशि—रत्नत्रय की वृद्धि होती

है। किंतु कमजोर आत्मा पर मयोग के कारण विभाव म रमण करती बाला अपान का ही मान गृह बना हुआ है। अतः द्रव्यतः कम की उपाधि लगी हुई है। इसी कारण मोनो बाध बाध और भोग एक साथ करना हमें भासित होता है। सभी द्रव्य अपने ही स्वरूप में रहते हुए ही स्वरूप का ही वर्त्ता भोक्ता होते हैं। अनादि बाल से कम गण के वन ही आत्मा पर भाव वर्त्ता भासा बन गया है। भोग और बाध वास्तव में एक सामयिकी क्रिया नहीं, एक जीवद्रव्य की क्रिया है, और मिथ्यात्व अविरति कषाय आदि का कारण कम का बाध पर कम फल को भोगना है। ऐसी भोग और बाध साथ ही होन रहन हैं।

अज्ञानी जीवों की रागादि परभाव आत्मा का ही दिनाई पड़ते हैं, परंतु वे वास्तव में आत्मा का नहीं। क्योंकि रागादि द्रव्य कमों का अवरोध कर जा आत्मा निमित्त भोग ज्ञान को प्राप्त कर लेता है। अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञान सम्पूर्णता और सम्पूर्णचरित्र युक्त आत्मा रागादि दोषों का नाश करता हुआ स्वतन्त्र ज्ञान, स्वतन्त्र मन प्राप्त कर लेता है।

मध्यम ज्ञानादि युक्त ध्याता आत्मा भेजान प्रकट ध्यान करता हुआ कम का बाध अनुभाग में स्थिति में बाध नहीं करता। यह आत्मा का ज्ञान को क्षीय रूप में मान कर ज्ञान का ज्ञान-तः, क्षीयभाव की क्षीयमय भावता है। वास्तव में ही ऐसा ही। ज्ञानस्वरूप आत्मा में क्षीयादि राग द्वेष मोहादि नहीं है, क्योंकि वे आत्मा का स्वभाव नहीं कम का स्वभाव रूप है। गुहात्मध्यात में यत्न स्वभाव का ध्यान किया जाता है। तब भेजान सुख ध्यात ब्रह्मा कम गुरु में मुक्त रहता है। अग्रज माह्ना कम की ग्रहण नहीं करना। बाध बाधमय है कम रागादि गुणल रूप है। भी दिन-दर भगवान् न द्रव्या का गुण और बाध निमित्त निमित्त बनाये हैं।

अब आत्मा ज्ञान द्वारा क्षीय का कम का स्वरूप ज्ञान लेता है तब कम आत्मा का हनु विद्यारा अविरति और कषाय योग का आश्रय का स्वागच्छ

और आप ही व्याप्ता, ऐमे तीनों का ऐतज्य हो जाने से शुद्ध ज्ञान ही त्रिगुण वृद्धि हो जाती है और कर्म का प्रवाह रूक जाता है, जिनमे राग द्वेष मूलनम हो जाते हैं। भव समुद्र के तीर पर पहुँच जाता है।

न्यायवाद दृष्टि ने चेतन का स्वरूप जैनदर्शन में उस प्रकार है—
आत्मा मद्रूप होने से 'उत्पादव्यय ध्रुव्यवृत्त 'सत्' उस मद्रूपानुगुण वृत्त है। गुणों व पर्यायों में प्रत्येक समय उत्पाद वय और ध्रुवता होती रहती है। आत्मा स्वरूप की अपेक्षा से, एक व भी है और नत्ता की अपेक्षा से अनेक भी हैं। कर्त्ता और अकर्त्ता भी है। भोक्ता अभोक्ता भी है। वह बुद्ध-ज्ञाना, शुद्ध ब्रह्मरूप मतिज्ञानादि चेतना स्वरूप है। पूर्ण प्रकाश केवलज्ञान होने पर मिद्ध रूप बन जाता है। ऐसा शुद्ध चेतन धार्मिक शरीर की गति में नट के समान इस समार रूप क्रीडाङ्गण में विभिन्न प्रकार के शरीर धारण कर नित्य नये खेल करता रहता है, यह कैसा विस्मयकारी है ! यहाँ प्रश्न होता है कि अत्यन्त जाति भेद होने पर भी जीव और जड़ का पारम्परिक सम्बन्ध कैसे हो रहा है ? उत्तर—विषय, पुद्गल-मिथ्यात्व कथावादि भाव जीव को मूर्च्छित कर देते हैं, जँमे मदिरापान से बुद्धिविभ्रम हो जाता है वैसे ही तम' बद्ध आत्मा भी स्वभान भूला हुआ रहता है। मोहनीयादि कर्मों की प्रवृत्तियाँ चुम्बक के समान आकर्षण गुण वाली हैं, उनके कारण नव नव कर्मपुद्गल आकर आत्मा के चिपक जाते हैं। और ज्ञानावरणीयादि कर्म आत्मगति ज्ञानादिगुणों को ढँक लेते हैं, अज्ञान से विकल बने हुए चेतन को कर्मों की जञ्जीर से बाँधकर अन्य कर्म समार में भ्रमण कराते रहते हैं।

यहाँ प्रश्न होता है कि क्या जड़ पुद्गल के अणुओं में इतनी शक्ति होती है कि वह अनन्त बलशाली आत्मा के ज्ञानादिगुणों को आवृत करके उसकी चेतना शक्ति को ही पूर्णतया मूर्च्छित कर दे ? उत्तर—जी हाँ ! इसे दृष्टान्तों से समझिये—जैसे कोई पुत्त मदाचारी है, किन्तु मद्यपान करने पर वह उन्मत्त हो, अकार्य तत्पर होता है, अत्यधिक पान कर लेने पर मूर्च्छित

दक हो जाता है, वैसे ही आत्मा भी दशनावरणीय कम के उत्पन्न से स्थानाद्वि-
निद्रावश हो निगोदादि में भुज्जित हो रहता है। ज्यों ज्यों दशनावरणाय कम
भोग दूरर उससे हटता है, त्यों त्यों उसकी भुज्ज्या घटने लगती है फिर भी
प्रभावित बना हुआ ऊँधता रहता है। वैसे ही आत्मा भी पचेन्द्रियत्व प्राप्त
कर लेने पर भी मोह-मिथ्यात्व के प्रभाव से अनभिज्ञ रह कर अकाय में
रागादि में तत्पर होता रहता है। विकास में प्राणी आदिपञ्चों के समान ज्ञान
दया/दान, सत्तनशीलता के प्रभाव से बुद्धि के विकास के सहज ज्ञानादि का
भी विकास होने लगता है। वास्तव में चेतन के साथ ज्ञान का अनादि
सम्बन्ध है। ऐसा न मानने पर सभी काय पाप तप समय मुक्ति आदि आकाश
पुष्पवत् अम्भभव हो जाते हैं। जीव के साथ कम का सम्बन्ध अनादि होने पर
भी वह अपना स्वयं छोड़कर जब पुद्गल नहीं बनता। यहाँ प्रश्न होता है
कि स्वभाव और विभाव की अनादि सत्ता मानने पर तो एकता (जीव कम की)
का प्रसङ्ग उपस्थित हो जाता है और द्वैतभाव (पृथक् सत्ता) ही नहीं रहता।
फिर तो ज्ञान का समान ही सदायस का भी सम्बन्ध रहना चाहिये।

उत्तर—स्वयं ज्ञान में से निष्कन्ता है, वह अनेक अतिरिक्त मिट्टी
आदि से मिला हुआ रहता है, किन्तु अग्नि के सम्बन्ध से सारी मिलावट दूर
होकर स्वच्छ स्वयं रह जाता है। जीव कम का सम्बन्ध अनादि अनन्त नहीं,
अनादि शांत है, क्योंकि हेतु मिलने पर टट जाता है। ऐसा भ्रम के होता
है। जाति भेद और अभव्य के कम का सम्बन्ध अनादि अनन्त होता है।
वहाँ पृथक् करने में हेतु का अभाव रहता है। जो अत्मा सम्बन्ध दशन प्राप्त
कर लेता है वह, स्वभाव का कर्त्ता माना जाता है। वह व्यवहार नय की
दृष्टि है। शुद्धनय की दृष्टि से तो आत्मा सदा स्वभाव का ही कर्त्ता है पर
परिणाम का नहीं। कम ही उस आत्मा का स्वभाव की शक्ति को अपनी ओर
छेत्कर अपने काय में लगाता है, अतः कम मन को दूर करने पर शक्ति
व्यक्त हो जाती है, तब आत्मा स्वाभाविक क्रिया करने लग जाता है और
मुक्त हो जाता है।

अमद्भूत भावकर्म का कर्त्ता निश्चय मे जीव नहीं है। व्यवहार नग सदा जीव और कर्म दोनों का प्रादुर्ग है।

यहां निष्पत्ति प्रश्न करता है-भगवन् ! जीव और कर्म व्याप्यव्यापक भाव से है या अन्य भाव से ? कर्म का कर्त्ता जीव निश्चय मे नहीं है तो वह फिर द्रव्य कर्म-पुद्गल कैसे करेगा ? क्योंकि चेतन तो पृथक् नत्तावान् है। जहां व्याप्य व्यापक भाव होना है; वहां तन्मयता होती है ? जैसे ज्ञानादिगुण उपर्युक्त भाव से आत्मा के हैं। कर्म, जीव या व्याप्य व्यापक कर्त्ता नहीं है, क्योंकि कर्म जड़, और आत्मा चेतन है। दोनों का उपर्युक्त भाव हो नहीं सकता। अतः जीव कर्म का कर्त्ता कैसे माना जाय ? यदि मानो तो दोनों का अनादि अनन्त सम्बन्ध भी मानना होगा। तब मुक्ति का ही समाप्त हो जायगा। अतः हमारी शका दूर करने की कृपा कीजिये ?

उत्तर—आत्मा के कर्म जनित अशुभ परिणाम ही कर्म के निमित्त हैं और वैसे अशुभ परिणामों के निमित्त पूर्वकर्म है, जो आत्मा के माय अनादिकारता से बद्ध है। दोनों का परिणामो और कर्मों का हेतु हेतुमद् भाव है। पर भावों की अज्ञानदशा के कारण अन वग जीव, स्वभाव समझता रहता है। जैसे चुम्बक की आकर्षण शक्ति का निमित्त कारण लौह है, लौह के आकर्षण का निमित्त चुम्बक है; किन्तु चुम्बक और लौह पृथक् पृथक् हैं। वैसे जीव और कर्म पृथक् होते हुये भी संयोग होने से परस्पर आवद्ध होते रहते हैं। निरवयवता की अपेक्षा से दोनों न्य स्व धर्म के ही कर्त्ता और भोक्ता हैं।

मीमांसक मत

इस मत की मान्यता है कि, जीव ब्रह्म पृथक् है और प्रकृति ही सुख दुःख, संसार भ्रमण, जन्म मरण, मुक्ति आदि की कर्त्री है। ब्रह्मस्वरूप जीव इनका न कर्त्ता है न भोक्ता।

जैन दर्शन की मान्यता—यदि जीव सवथा पृथक् ही है, तो प्रकृति का सम्बन्ध कैसे होता है ? प्रकृति ही संसार भ्रमणादि एव मुक्ति, दोनों क्रिया

कैसे कर सकती है ? कथानि प्रकृति जड़ स्वरूप है, वह मुख्य दुःखादि की निमित्त हो सकती है, यह सत्य भी है, किन्तु मुक्ति की कर्त्ता प्रकृति नहीं हो सकती । मुख्य दुःखादि प्रकृति के कार्य और मुक्ति आत्मा का कार्य है । कर्त्ता अपना कार्य कर सम्पन्न है और भोक्ता भी यही है । प्रकृति का कार्य—मुक्ति नहीं, क्योंकि मुक्ति रूप कार्य का भोक्ता आत्मा है, अतः मुक्ति आत्मा का कार्य है । हम निदानय नय की दृष्टि से ब्रह्म-आत्मा को सदा ज्ञान का कर्त्ता भोक्ता मानते हैं । मुक्ति का कर्त्ता भी आत्मा को मानते हैं, किन्तु व्यवहारमय की दृष्टि से ज्ञान का भोक्ता और कर्त्ता भी स्वीकार करते हैं । ब्रह्म प्रकृति का सम्बन्ध भी अनादि है । ऐसा होने पर भी ब्रह्म जब सुषुप्ति मुक्त जागृतावस्था में आता है, तब स्वयं से प्रकृति को पृथक् समझ कर उससे मत होने का प्रयत्न करता है और मुक्त होता है ।

ब्रह्मवादी मत

इनके मत में ब्रह्म एव है और वह सदा अखण्ड ध्रुव ज्ञान मुद्रा धारण ह्यलोचन में निवास करता है । जगत् में जितने जीव हैं, वे सब उसी के अंश हैं । ये जीव जड़ और ज्ञाता दोनों प्रकार के हैं, येही नय-नयेशरीर धारण कर समार में भ्रमण करते हुए मुख्य दुःख भोगते रहते हैं । उस पूरे ब्रह्म की जब इच्छा होती है, तब उस अंश को अपने में मिला लेता है । इस प्रकार शुद्ध ब्रह्म स्वाधीन है । उसे नर्मवश दुःख दुःख होता है, ऐसा कौन कहता है ? यह तो निरर्थक मुक्त है । यसे ही अंश भी होत हैं ।

जब दर्शन द्वारा उक्त मत का निराकरण—

ब्रह्म का स्वभाव इच्छाशरीर रहित होता है, वह दोषों से मुक्त, शिथिल रूप माना गया है । इच्छा स्वयं ही दोष रूप है । आत्मा असंख्य प्रदेशों में । विज्ञान अखण्ड प्रदेश युक्त रहता है । वह अंश रूप से पृथक् होता है, तो अखण्ड कैसे ? और अंश खण्ड रूप बनने का क्या हेतु है ? इच्छा की हेतु मानोगे तो इच्छा दोष रूप होने में शुद्ध ब्रह्म की माँझ में कैसे होगी ? अतः

ब्रह्मा आत्मा अनन्त है। वे सभी चैतन्य स्वरूप, ज्ञानपुञ्ज, नित्य नित्य भाव युक्त, शुद्धनय की अपेक्षा में पर भाव के अवर्त्ता अभोक्ता हैं। उनमें जो कर्म सहित है, वे विभाव काम क्रीडादि के वशीभूत हो रहे हैं, वे ममारी हैं, जन्म मरण के चक्र में निरन्तर भ्रमण करते हुये चारों गतियों में कृत कर्म के भोग स्वरूप सुख दुःख भोगते रहने हैं। जो कर्म मुक्त हो गये हैं, वे शुद्ध मित्र शुद्ध, मुक्त मात्र ब्रह्म स्वरूप हैं। साराण कि जीव अनन्त हैं, न्यूनन्य सत्ता वाले हैं। किसी एक ब्रह्म के आधीन नहीं।

बौद्धमत की मान्यता—

बौद्ध क्षणिकवादी हैं। इनकी मान्यता है कि संसार के सभी पदार्थ जीव भी क्षणस्थायी हैं। जो जीव प्रथम क्षण में था, वह द्वितीयक्षण में नहीं रहता। जो प्रथम क्षण में कर्त्ता रूप है, वह पण्ड जान में भोक्ता भी अन्य हो जाता है। वे पर्याय को ही सर्वतोभाव से द्रव्य मान लेते हैं। और अपने इस आग्रह के कारण जीव के अखण्ड ज्ञानगुण की धारा को ही काट देने हैं।

जैनदर्शन की अपनी मौलिकता है। वह वस्तु-द्रव्य को नित्य सदा काल स्थायी मानता है। द्रव्याधिक नय की ओला में द्रव्य नित्य है, पर्यायाधिकनय से अनित्य है। परिवर्तन पर्याय में होना है न कि द्रव्य में। यदि जीव द्रव्य क्षण क्षण में नष्टानष्ट बने तो स्मरण की शृङ्खला छिन्न भिन्न न हो जाय। चैतन्य का स्मरण ज्ञान अखण्ड धारा रूप है, उसका प्रवाह रुक जाने पर यह स्मरण कि 'अमुक कार्य मैंने अतीत समय में किया था' 'यह मेरा किया हुआ है' 'भविष्य में मैं अमुक कार्य करूँगा' इत्यादि। करोड़ बाल्यावस्था में किया गया कार्य युवा और वृद्धावस्था में भी स्मरण में आता रहता है। एकान्त रूप से जीव को क्षणिक मानने में यह कैसे सम्भव होगा? अतः क्षणिकवाद युक्ति, युक्त नहीं। एक द्रव्य में सत्ताद्रव्य और ध्रौव्य की मान्यता सत्य व युक्ति युक्त है। द्रव्य ध्रुव निश्चल रहता है, पर्यायो में प्रत्येक समय उत्पाद व्यय होता है।

नैयायिकमत और उसका निराकरण

नैयायिक उद्यम को प्रधान मानता है, उसका कहना है कि सभी कार्य पुरुषाय से होते हैं । सन्तानादपत्ति, कृषि, उद्योग शिल्प, योजन आदि सभी कार्य पुरुषाय से सम्पन्न होने हैं । भाग्य की पूववृत्त शुभाशुभ वम की मायता मिथ्या है । पुरुषाय के बल पर ही सब कुछ हाता है । इसीलिए हम विद्वन्नाथ ईश्वर को जगत् का कर्त्ता मानते हैं । उसी प्रकार सभी जीवों का उद्यम को ही सब कार्य के सम्पन्न होने में स्वीकार करते हैं । स्यादवादी जैनसिद्धान्त एसी एकांत बात नहीं कहते हैं । जैन भाग्य, पुरुषाय आदि सभी स्वीकार करते हुए वर्तमान व्यावहारिक कार्यों के उद्यम को आत्मा का शुद्धकाय स्वीकार न कर पूवकर्म जनित सम्भार का फल मानते हैं । चेतन का शुद्ध बीज जाग्रत होने पर तो वह परमाव-व्यावहारिक कार्यों का कर्त्ता ही नहीं रहता । वम के उद्यम में जो उद्यम हाता है, वह तो वम का ही कार्य करता है । आत्मा का वास्तविक उद्यम रत्नप्रय जानदगन चारित्र्य की जो निजगुण हैं, उन्हें उज्ज्वल बनाने का हाता है । जीव और जड का भेदभाव के अभाव में अज्ञान में परभाव समस्त व्यावहारिक कार्य का स्वामित्व वस्तुत्व और भोक्तृत्व का अहमाव— 'मैं कर्त्ता मानता हूँ रहता है ।

बालवादी मत विमर्श

बालवादी का कहना है कि जगत का सभी कार्य बाल व आधीन है और समय पार ही जान है । अनुप्य भी समय पार बाल व सत्त्व बाना है तत्त्व तृद्ध बाना है । वम ही सभी वस्तुयें—वृक्षाणि भी समय पार व पनम पुनने हैं । बाल व प्रभाव व श्रुतु परिवर्तन, जम मरणाणि भी हाता हैं । सार व विमुक्त दुग्ग, रवि चन्द्र ग्रहादि का उदयास्त, जम भरण, सासार भ्रमण और मुक्ति भी बालधीन ह ।

अज्ञान बाल, रत्नप्रय, विपत्ति, पूववृत्त और पुरुषाय इन पांचा मन्त्रायाम का मितन पर सभी कार्यों का हाता स्वीकार करता है वह हा पाया

मे से एक का भी अभाव हो नो कार्य नहीं होना" ऐसा मानता है । केवल एक का ग्रहण एकान्तवाद है, जो मिथ्या है अतः स्याद्वाद दृष्टि में ही यथार्थ ज्ञान होता है । किसी एक पक्ष को ग्रहण करने में वस्तु का ज्ञान नहीं होता । सभी पक्षों से देखना विचारना चाहिये । चार-प्रमाण, सप्तनय, चार निशेष, और सप्तमङ्गी से वस्तु के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है ।

मीमांसक कर्म को व वेदान्त ब्रह्म को मानते हैं । वे मात्र द्रव्याधिक नय ग्रहण करते हैं । क्षणिकवादी पर्यायार्थिकनय मात्र ग्रहण करते हैं । नैयायिक कर्मवादी हैं और उद्यम के पुरुषार्थ के ही पक्षपाती हैं । दैव कालवादी हैं । पाँच समवाय में से केवल काल को ही लेते हैं । इस प्रकार ये सभी अशग्राही हैं । स्याद्वादी सर्वग्राही हैं और एक ही वस्तु को अनेकता में ग्रहण करते हैं, अर्थात् पूर्णता से ज्ञान सकते हैं । अशग्राही तो उन बात चक्षुहीनों के समान हैं, जो हाथी का एक-एक अवयव-गुण्डा राजदन्त पद पुच्छादि पकड़ कर उतना ही गज मान बैठते हैं । चक्षुयुक्त मनुष्य नो सर्वाङ्गमम्पूर्णगज को देखता है और उसे ही गज स्वीकार करता है । मात्र अंग विशेष को नहीं । उन्ही प्रकार अनेकान्तवादी भी वस्तु की पूर्ण जानकारी को ही वास्तविकज्ञान स्वीकार करने हैं ।

प्रकृति को ही मुख्यरूप से स्वीकार करने वाले, व्यवहार नयग्राहक मात्र हैं । एकान्त ब्रह्मवादी निश्चयनय को ही ग्रहण करते हैं । क्षणिकवादी पर्यायार्थिक नयमात्र के और उद्यम-पुरुषार्थवादी भी इसी के ग्राहक हैं, कालवादी की भी वास्तव में यही मान्यता है ।

यथार्थ में ये सभी जीव के परिणाम हैं । प्रकृति-कर्मजनित व्यवहार है । निश्चय से प्रत्येक आत्मा नित्य, ज्ञान स्वरूप है । पर्यायनय अध्रुव-अनित्य होने से सूक्ष्म और परिवर्तनशील है. पुरुषार्थ आत्मा का कर्तृत्व स्वभाव है । भले वह स्वभाविक हो या वैभाविक । जो कि आत्मा के सम्यग्-ज्ञान और मिथ्याज्ञान पर निर्भर है । काल प्रवाह रूप चक्रगति वाला है । इस प्रकार आत्मा-जीव अनेक अंगयुक्त है । किसी एक अंग को ही ग्रहण न कर

मर्वाङ्गमाहक ही बुद्धिमान् है । एक ग्राहक बुद्धिहीन है या कुबुद्धि है । बुद्धिमान् व्यक्ति युक्तियुक्त प्रमाणसिद्ध, वस्तुमान को स्वीकार करते हैं । और स्याद्वाद ही ऐसा करने में समर्थ है, एकांतवाद नहीं ।

स्याद्वाद का स्वरूप

१ स्यादस्ति २ स्यान्नास्ति ३ स्यान्मिनास्ति ४ स्यादवक्तव्य ५ स्यादस्ति अवक्तव्य ६ स्यान्नास्ति अवक्तव्य ७ स्यादस्तिनास्ति युगपद् अवक्तव्य । यहाँ स्यात् वा अथ कथंचिद् किसी अपक्षा से किया है । कदाचित् नहीं । १ स्यान्मि जीव । जीव कथंचित है, अर्थात् स्वद्रव्यगैरकालभाव की अपक्षा में है ।

२ स्यान्नास्ति जीव । जीव कथंचित नहीं है, अर्थात् परद्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा नहीं है ।

३ स्यादस्तिस्यास्मास्ति जीव । जीव कथंचित है, कथंचित नहीं है । अर्थात् जीव में स्वद्रव्यादि में अस्तित्व और परद्रव्यादि से नास्तित्व है । यद्वा क्रमण विधि और निषेध की विवक्षा की गयी है ।

४ स्यादवक्तव्यो जीव । जीव कथंचित अवक्तव्य है । यहाँ विधि निषेध दाना की एक साथ विवक्षा होगी है, तब दोनों को एक साथ बताने वाला कोई शब्द न होने से जीव का अवक्तव्य कहना पड़ा है ।

५ स्यादस्ति अवक्तव्यो जीव । केवल विधि और एक साथ विधि निषेध की एक साथ विवक्षा होने से 'जीव है और अवक्तव्य है,' यह भग्न बनता है ।

६ स्यान्मिनास्ति अवक्तव्यो जीव । 'जीव नहीं है और अवक्तव्य है' यहाँ निषेध मात्र तथा एक साथ विधिनिषेध की विवक्षा होने से ऐसा कहा जाता है ।

७ स्यादस्तिनास्ति युगपद् अवक्तव्यो जीव । यहाँ क्रमशः विधिनिषेध दाना की और एक साथ विधि निषेध दाना की विवक्षा से 'जीव है,' नहीं है और अवक्तव्य है ।

उसी प्रकार जीव विषयक नित्य, अनित्य । नन्, अमन् । वक्तव्य, अवक्तव्य । एक अनेक आदि सभी अभिमत हैं । द्रव्याधिकनय की अपेक्षा में जीव नित्य भी है, तो पर्यायधिकनय की अपेक्षा में अनित्य भी है । इसी अन्यत्र भावना करनेनी चाहिये । ऐसा यह मच्चिदानन्द आत्म ज्ञान दर्शन चाण्डि की साधना में स्वल्प को प्रकट कर पूर्ण शुद्ध मच्चिदानन्द मय बन कर सदा के लिए मिद्ध बुद्ध मुक्त बन जाना है ।

श्रीमद् ने जीवस्वरूप का निरूपण इस तृतीय द्वार के पूर्वोद्ध में किया है । अब तृतीय द्वार के उत्तराद्ध में जीव को कर्ममुक्त करने की साधना का निरूपण कर रहे हैं ।

तृतीय द्वार का उत्तराद्ध

जीव को नवीन २ गुणमय जानना निर्विकल्पज्ञान है । एक विन्मय स्वरूप का ध्यान कर्मनाशकारक है निर्विकल्प ज्ञान है ।

आत्मा अनादिकाल से अज्ञान बना हुआ, रागद्वेषरूप मदिरापान करता रहा है, इसमें अज्ञान में महान् वृद्धि होती रही और विषयकपाय ने वशीभूत कर आत्मा के ज्ञानगुण को अवगृह्य कर दिया तब विभाव ने अपना साम्राज्य विमृत्त कर लिया है । निर्विकल्प शुद्ध आत्म स्वरूप के ध्यान के प्रताप में मात्रक आत्मा, अज्ञान के प्रबल प्रताप को नष्ट कर देता है, कर्म की शृंखला को तोड़ मरोड़ डालता है, अज्ञान के साम्राज्य को छिन्न भिन्न कर ज्ञान का साम्राज्य स्थापित कर लेता है, अतः निर्विकल्प ध्यान ही मुक्ति का हेतु है । यही ध्यान ज्ञान का धाम अनीम आनन्दमय, कर्म के पाश को तोड़ने वाला, अनन्तवीर्यशक्ति सम्पन्न, क्षायिक भाव के योग्य, उज्ज्वल परिणामो से युक्त, मोह का नाशक, आत्मा का रक्षक है । उसीका अवलम्बन लेकर अपने ज्ञान का प्रसार करना चाहिये । आत्मा के स्वरूप को प्रकट करने में यही ध्यान एकान्त रूप से हेतु है । यह अज्ञानतम और त्रयताय को नष्ट करने वाला है ।

यह शरीर भी हेय-त्यागने योग्य है । अनादि अनन्त ज्ञान ज्योतिर्धर, निज को पर का कर्त्ता मानता हुआ, अज्ञान का निवास स्थान बन गया है,

उसे स्वरूप का भान तक नहीं रहा। ज्ञान दृष्टि छूट जान से शरीर पर ही चेतन की भाँति हो गया है। मैं पर का पुद्गल कम का 'वर्त्ता हूँ' ऐसा भ्रम हो गया है। जैसे घाँधी पी सेने पर मानव भान भूल जाता है, वैसे ही माह का मन्त्रि पीवर आत्मा भी भान भूल रहा है, स्व पर का भेद करन का ज्ञान नहीं है। ह आत्मन् ! जैसा इंद्रिय विषयो के भाग पर अनुराग है वैसे आत्म-ज्ञान पर अपन चित्त में अनुराग रख। यही मुक्ति का मार्ग है। दृढ धारणा कर कि जो सही है—(शरीराणि) वह मैं नहीं हूँ। मैं तो अक्षी चिमय हूँ। अतः सम्मत् पर भाव का छाँवर एक मात्र आत्मा के स्वरूप का विचार कर जिस पर देह का ममत्व छूटे और आत्मनत्त्व पर दृढ विश्वास हो जाता है। यह शरीर नश्यत है इस अपना मानन बला मूलशरीरोमणि है। यह तन पुद्गल-जड का पिण्ड है तू आनन्दमय चेतनरूप है। यह अनमेल मिलन अर्थात् ज्ञान चेतन का मिश्रण न जाने किस प्रकार हो गया है। ह चेतन ! तू यैम मा मास अग्नि गंधिर, मलमूत्रादि दूषक दूषण करन लगता है। किन्तु उहीं मासादिने मभूह शरीर, जो अपना भान कर उसके बाह्य स्वरूप पर मोह करता है। यह तंगी बितनी अधिक धार अनानदशा है। अन हे चेतन ! विचर ! तू इस शरीर का मोह छोड़ दा, इसका मोह तुम्हें आतुर-जातुन य बुल गता है कि तू यह गंधवनगर व समान-अथान् आवागम बादना की नगर बना व सहज क्षणभङ्ग रक्षण देखन नष्ट हो जाने वाला है। रूप की शोभा भी शोभा की शोभा के समान क्षणिक है। इन तन में बहुत शक्ति के शय (मुर्दे की गी दुग घ जाती है, यह रोगाणि दूषण का घर बना गया है। अतः शरीरकी ममता छोड़ ना तो तू मे आत्मनान की ग्यानि जगमगा उठे। शरीर की ममता छोड़ उसे आत्मा से भिन्न अनुभव कर आत्मा मुक्ति के समीप पहुँच जाता है। इस शरीरादि पर वस्तुत्वा पर अपनत्व का अभिमान करना ही भव धमणका मूल है।

निस्तृह भावरचना ही श्रेयस्कर है। निस्पृह भाव ही पाप नाशक, मुक्तिमाग का साथी, त्यागन में सबका विमुक्त, अध्यात्मनृपति, परमगुण रूप

नवतत्त्व के विकल्प तीनों योगों—मन, वचन, काया के संकल्प, इस आत्मा में रहते हैं, इनमें योगी में रहते हुए भी आत्मा नित्य इनमें अंगूठ रहता है, ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मों से वेष्टित होने पर भी आत्मा चेतना का स्वामी स्व स्वरूप में ही रहता है। यह सुमति का स्वामी है, इसमें सुमति का अंग भी नहीं, अपने ही ज्ञानादि घन में मग्न रहता है। परम अगण्ड ज्योति नित्य सद्रूप है। ऐसा जिनेन्द्र वरित आत्म स्वरूप ही देवचन्द्र ग्रन्थकार को छुट है। इसी तत्त्व को जैनशास्त्रों में नित्य अनित्य, एक अनेक, सद् असद् आदि नयों में बतलाया है, आत्मा मूढमात्तिमूढम, स्मृणात्तिमृन्, अन्धी, अगन्ध कहा गया है। लोकालोक में तीन कालवर्ती होने वाले समस्त द्रव्यों के उत्पाद द्रव्य प्रोद्य को ज्ञान से देखने जानने की शक्ति इस आत्म तत्त्व में रही हुयी है। सकल-विश्व उस ज्योति में समाविष्ट है। ऐसा परमात्म स्वरूप आत्मा उक्त महान्त्य को धारण करने वाला है। वही परम आनन्दस्वरूप, देवचन्द्र ने भी ज्ञान लिया है।

यद्यपि जीव अपने पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मफल को भोगता है; किन्तु सम्यक् ज्ञान दर्शन युक्त सम्यक्त्वजीव के बन्ध नहीं होता, क्योंकि वह वैराग्य भावयुक्त है, बन्ध का कारण आमक्ति भाव है; अन ज्ञाना अवन्धक रहता है।

शंका—आपने ज्ञाना को काम - भोग मुख दुःखादि भोगते हुए भी अवन्धक कहा, यह हमारे समझ में नहीं आता, ज्ञाना को पूर्ण अवन्धक मान लेने पर तो नारा व्यवहार जो मुनि, आर्याणें श्रावक-श्राविकाएँ जो भी व्रत नियम, तप, जप, इन्द्रियदमन, दान शील, दयापालन आदि करने हैं, वे सब निष्फल बेकार कही जायेंगी। और बेकार होने ने ये सब व्यावहारिक क्रियाएँ अत्यन्त कठिन होने के कारण माधकजन छोट देंगे। इस प्रकार तो चतुर्विध सङ्घ का ही लोप हो जायगा। फिर तो सभी लोग प्रमाद सन्नि होकर निष्क्रिय बन बैठेंगे; जबकि जिनागम ज्ञानमुक्त पुरुषार्थ द्वारा ही मुक्ति की प्राप्ति मानत है फिर अकेला ज्ञान मुक्ति कैसे प्राप्त कर सकता है?

समाधान—सुम्हारी शका उचित है, हमने धार्मिक—क्रिया त्याग
तपादि का निषेध क्यों किया ? यह तो आयुष्य को—मवीर कर्मों के भागमन को
रोकने और सत्तागत कर्मों को क्षय करने कलिय आवश्यक ही है । किंतु ये ज्ञान-
पूर्वक ही तमो मोक्षफल दायिका है अतः ज्ञान की प्रधानता है । हम तो
धार्मिक सम्प्रदायों की बात कर रहे हैं ।

जैसे विषयज्ज्ञानी विष के विकार को जान कर उसका उपचार
करके उस दूर कर देता है । यह स्वयं विष को श्रुपता है, परंतु वह मूर्खित
नहीं होता है । जैसे नाम विषहारक मन्त्र का जाता अपना अङ्ग नाम के मुख में
जाम देने पर भी स्वयं अद्विजित-दश रहित रहकर नाम से मुक्त करता है, वैसे ही
जाताजन पूज्य कम मयोग में भोग तो भोगते हैं, किंतु अनित्य भाव में घटने में
उस बाध नहीं होता । चक्रवर्ती भरत, श्रीकृष्ण और श्रेणिक आदि ऐसे ही
आत्मा थे । अनासक्त भाव में रहने में भरत की आत्मा भवन में अनित्य भावना
करते हुए ब्रह्मज्ञान हुआ गया । श्रीकृष्ण व श्रेणिक आदि ने तीव्रतर नाम कम
बाध दिया एकात्मिकी बन यह ज्ञान का ही प्रताप था ।

एक और दृष्टान्त में भी इस समझात हैं । जैसे किसी वन में दावानल
लगता । वह पहले ही अपनी उवातावा से ग्राम नगर, बल उपवन गिरि आदि
को जलम करने लगता । तब किसी मन्त्र सिद्धजन ने मन्त्र द्वारा अग्नि दक्षि की
बाधकर उग बुझा दिया, फिर सारा ताप मिट जाता है । और जग मन्त्र को
जानने वाले स्वयं की अग्निमित्रता कर अग्नि की दहन तापन शक्ति में अग्निभूत
न होकर उत्तम उद्योग करने दूसरे उपर प्रभुत्व नृप्य करते हैं फिर भी वे जलत
नहीं, बस ही ज्ञान अपनी बाधशक्ति से बाध की दक्षि की अवरुद्ध करने पूर्व
जग निराश्रित कम की भोगता हुआ भी अवश्य रहता है ।

प्रश्न फिर भी लक्ष्मीम ध्याति कहता है—आप कहाँ तो सच है, फिर
भी मेरे मनका सम्बन्ध दूर नहीं हो रहा है । मुझमें ममान सम्प्रदायी भी भागीरथी
स भाग भोगता हुआ अवश्य है, आपकी यह बात कम मानें ? तबवा अवश्य

आज तक यह भेदज्ञान जाना ही नहीं । न चित्त में उसे ध्यान किया । अब जान लिया है तो अवश्य कर्मगा ।

सर्व जड-पर हेय है, उपादेय तो माय आत्मा है । शुद्ध मय्यर्हादि वाता मय्यकरूपी आत्मा प्रवृत्ति में विरक्त चित्त में होता है, वह नर्म वा कर्ता नहीं रहता मिथ्याहृदि क्रूर बुद्धि ही इन पर-जड रंग में रंगा हुआ, पर-वर्मवृत्त फल तो भोक्ता है । भेद जान करने में विनश्रण व्यक्ति और सब त्याग कर स्वप्न का विवेक ही जागृत करने है यही जीवनदर्शन की रहस्यपूर्ण माधना है । भेद जानी जन पर-जड में मुक्त, जानादिगुणों में युक्त हैं वे स्वयं को परमा भोक्ता न मानने से मुक्त हैं । ऐसे मुक्त भावयुत आत्मा का 'दिवचन्द्र' ग्रन्थकार अगदा देवी में चन्द्रमा के समान नाथक, ध्यान करने है ।

चञ्चल मनरूप समुद्र में से विकल्प तरगावलि उत्पन्न होती है उसमें से उठने वाले सकल्पमय काने बादल चेतन रूप चन्द्र को आच्छादित करते हैं, जिसमें जान चेतना चन्द्रिका अवगुह्य हो जाती है । कर्म चेतना और नर्मफल चेतना के कारण आत्मा पर का कर्ता भोक्ता स्वयं को ही मानने लगता है ।

आत्मा तो आत्मभाव से पूर्ण, द्रुव, निश्चल चेतनायुक्त ज्ञानगुण का स्वामी है । वही ध्याता व ध्येय है, उसमें भेद नहीं, चिदाकर का ध्यान ही करना चाहिए, पर-जड की तो खोज करना ही त्याज्य है अर्थात् जड से मुक्त पाने का लक्ष्य परित्याग करके चेतन में रमण करने से ही अव्याबाध सुख का अनुभव होता है । अतः चञ्चलता छोड़ कर स्थिरैक भाव में रहकर चित्त में उठने वाली अनङ्ग-कामदेव की तरङ्गों को न उठने दो । ऐसा करने वाला ही सादि अनन्त और महान् आत्म मुख का अनुभव करता हुआ अभय हो, श्रेष्ठ प्रधान मोक्षपद को प्राप्त करता है ।

परगुण-विषय कषायादि के अभिमुखज्ञान वाला चेतन परवश हो जाता है । स्वगुण जानादि के अभिमुख रहने वाला आत्मगुणों में लीन बना हुआ स्वतन्त्रता का अनुभव करता है ।

अतः ज्ञान को स्थिर करने का उपाय है दे-ममत्त्व का त्याग । जैसी प्रीति दहादि पर है वसी चेतनगुणों जानातिपर हो जाय ता फिर बंधन नहीं होता । वास्तव में आत्मा अवयव भेदान में उत्पन्न है ।

भेदना का चिंतन हम प्रकार करें—ब्रह्मा स्वभाव जान देहादि मरे महा, मोहमदोमन जीव ही इस पर ममत्त्व भाव रखन हैं । मैं तो स्वरूप का भान कर लिया है, हममें मत्त पदार्थ—हादि मर घन नहीं मैं इनका स्वामी नही हूँ, मैं तो जानादिगुणों का स्वामी हूँ यही अलग स्वरूप वाला मर मत्त मग रहने दे । अतः अंतरंग ब्रह्मादि और बहिरंग दहादि जो पर है, उपासना संग छोड़ कर इन्द्रियगुण प्राप्ति की परछाई भी अपना ऊपर न पहन दूंगा । ऐसे दृढ़ मन्त्र वाला है चेतन । तु चा जाय ता तुष वमपुञ्ज का बंधन कभी नहीं हागा ।

यस्तुतः, आत्मा निष्क्रिय है, किंतु तब निष्क्रिय तोह अवस्थानमणि शुम्भर का समाग पाकर सक्रिय हो जाता है—ता शुम्भर को आर गिपता है, वस ही राजमा आत्मा निमने कम राग लगा हुआ है, वही सक्रिय बनता है, कममुक्त आत्मा तही ।

आत्मा स्वयं शब्द शुद्ध चिन्तन = निःशब्द भुक्—निष्काम प्रमोद आनन्द अनानिजन निमन परब्रह्म पूरा परमज्याति परम अलग अक्षय, महाशास्त्र प्रविनाशी अज परमात्मा गुणाति निरजन अज्ञान, निष्काम भगवान् है, किंतु कमसंग स ज्ञान को भुन कर पुन पुन कम की ही भगति करता हुआ बन्धूरीमृगवत् समार अरण्यवाता में भ्रमण कर रहा है ।

जिसे आत्मज्ञान हो जाता है वह चेतन की धारा में लीन रहकर स्वयं को 'कम व कम स काय व पृथक् है, म्यादवाद भावपुक्त सदा महा है ।'

हम प्रकार जानदृष्टि और उत्तम निर्णय चारित्र्य आत्मस्वरूप की एकता करना हुआ कमबल का शापण कर मुक्त हो जाना है । किसी किसी को साह होना है कि एक आत्मद्रव्य में तीन गुण ज्ञान दान चारित्र्य वस रहन है ? उसका समाधान निम्न प्रकार से समझना चाहिए ।

जैसे सुवर्ण में पीतत्व, स्निग्धत्व और गुणत्व निरन्तर रहते हैं। अग्नि में दहनत्व, पवनत्व, तपनत्व ये तीनों विशेषतायें नदा रहती हैं। जल में शीतलता, दृढता, निर्मलता ये तीन स्वाभाविक गुण हैं, जो सदा रहते हैं। उसी प्रकार आत्मा में भी तीनों गुण—ज्ञान दर्शन, चारित्र्य सदैव रहते हैं। निश्चय से उपर्युक्त तीन द्रव्यो—सुवर्ण, अग्नि और जल में उनके कथित गुण उनमें अभेद-तद्रूप से नित्य विद्यमान रहते हैं, वैसे ही आत्मा के तीन गुण सदैव उसी में हैं कभी पृथक् नहीं हो सकते।

व्यवहारनय की दृष्टि में श्रुतादि रूप में पृथक् की कल्पना की जाती है। अभ्यास द्वारा प्राप्त होना ही ऐसी मान्यता की जाती है। किन्तु वास्तव में चेतन की शक्तिरूप में चेतन में ही है, अभ्यास में प्रकट होते हैं। ये गुण—नवेदनादि अन्य द्रव्य में हैं ही नहीं अतः जड़ को किन्ता ही अभ्यास करावें तब भी उसमें से किसी भी प्रयत्न द्वारा प्रकट नहीं किये जा सकते।

जब आत्मा अज्ञान दशा में रहता है तब मोहकर्म काम भोग का लालच देकर अपनेवश में कर लेता है और आत्मा काम भोग के लिए नदा विकल रहता है। भेदज्ञान—जीव और जड़ को पृथक् मानकर ज्ञान, मोह के प्रभाव को दूर कर देता है। इस प्रकार भेदज्ञान निर्दोष अमल अखण्ड धारावाही रूप से सद्बुद्धि आत्मा करता है यही ध्यान कर्म के जाल को नष्ट करने में प्रबल कारण है। इसे करने पर आत्मा अकल सकल अन्य से सर्वशामित्र, जगत् में रहा हुआ भी जल में कमलवत् निर्लेप रहता है।

एक अहमबुद्धि मुक्ति और देहात्म एकत्वबुद्धि ससार, भव भ्रमण बढ़ाने वाली है अतः देह बुद्धि त्याग कर स्वभात्मगुण-ज्ञानादि से प्रेम करना चाहिए। सुख-दुःख दोनों पुण्य व पापरूप पुद्गलस्कन्ध हैं, इन पर आत्म बुद्धि रखना ही कर्मवन्ध हैं।

यहाँ जिज्ञासु शिष्य प्रश्न करता है कि—

“दुष्ट भाव पाप का हेतु और अच्छा भाव पुण्य का हेतु है” अतः दोनों

प्रकार के कर्मवच के हेतु पृथक् पृथक् होते हैं । पाप के उदय से आता व पुण्य के उदय से आता का अनुभव होता है, दोनों में छार व मिष्ट के समान स्वाद भेद है । पाप कुगति और पुण्य सुगति का दाता है । इनमें ये प्रत्यक्ष ही भेद दृष्टिगोचर होता है । पाप सभी को अनिष्ट और पुण्य सभी को इष्ट लगता है । सर्वत्र शुद्धि निर्मल परिणामों से इनका भेद स्पष्ट दिखता है । अतः पाप हय और पुण्य तो उपादेय ही मानिये । इसमें क्या दोष है ?

समाधान—

पुण्य पाप दोनों कर्मजाल रूप हैं, हतु रस गति पत्र में वस्तुतः भेद नहीं है, जैसे कम्पराग पाप फल और अकम्पराग पुण्यफल है किन्तु है दोनों ही दृक् रूप और विनाशी । मिथ्यादृष्टि जीव को ही पुण्य पर रवि भाव और पाप पर अरवि भाव उत्पन्न होता है यह उसकी विपत्ति है । उसकी ऐसी बुद्धि रहती है । सम्यग् दृष्टि जाय तो दोनों को जड़ रूप और अनामरूप मान कर आत्मा को इनसे पृथक् दबता है । वह दोनों को ही हय और मात्र शुद्ध आत्मस्वरूप को उपादेय मानता है ।

पाप से विमुक्त और पुण्य व अभिमुख रहने वाला सुगति की आकांक्षा रख कर कुगति से भयभीत रह कर मैं कर्त्ता हूँ' मैं अमुक काम किया' इत्यादि वह बुद्धि से मदोन्मत्त रहता हुआ विपरीतरीति सत्तार भ्रमण की वृद्धि करता है । वह मय आत्मा के स्वरूप को नहीं पहचान कर भ्रम भाव मन में रखता है । देह धनादि को अपना मानता हुआ कम का बंध करता है । ऐहिक और पारलौकिक मात्र पौद्गलिक भीतिक सुख की ही आकांक्षा रखने वाला मिथ्यादृष्टि है ।

ऐसा मिथ्या दृष्टि आत्मज्ञान से अभिन्न न होने के कारण परजड़ वस्तुओं में निजस्व भाव रखता हुआ उस ही सर्वस्व मानने के भ्रम में रहता है कम का कहकर गमन आपत्ति उसी पर आती है वही कम बंध करता है । चित्त में वचता रखता हुआ सुख की आकांक्षा से मत्त स्वयं निगम सत्तार रूपी नगर में भोग रूप अत्यादि की याचना करता फिरता है । इन काम

भोगादि की जो हानि के दुर्गति के स्थान है, अशुचि-जगत् की वमन कीहु यी वस्तु के समान हेय घृणास्पद है, उनसे उसे ग्लानि नहीं होती, जैसे विप खाये हुए व्यक्ति को निम्ब भी मधुर लगता है, वैसे ही मिथ्यादृष्टि को भोग मुखदायी लगते हैं। वह लोटन कवूतर के समान उलट-उलट कर उलटी चाल से उड़ता है अपने मिथ्यात्व के कारण सुलटी चाल नहीं चलता अर्थात् सरलभाव के अभाव में उनकी गति मुक्ति की ओर नहीं होती। पुनः पुनः भोगों की वाञ्छा करने के कारण ससरण ही करता रहता है।

मिथ्यादृष्टि मोहगत जीव को यह भी भान नहीं रहता कि जीवन अञ्जलिगन नीरवत् क्षण-क्षण सदा कम हो रहा है, यह शरीर और मानसिक शक्ति-स्मरण शक्ति भी क्षण-क्षण क्षीण होते जा रहे हैं। काल के स्वभाव का कभी विचार तक नहीं आता कि यह कभी मृत्यु रूप में आयगा। दूर-दूर की सोचना रहता है, माता, पिता, भ्राता, भगिनी, पति, पत्नी के संग में सुख की कल्पना में लीन, धर्म का रहस्य न जानने के कारण भ्रम से घिरा हुआ, ज्ञान हीन क्रिया करता हुआ पुण्य की रटना लगाये रहता है। “सारे भौतिक सुख क्षणिक और परिणाम-फल में दुःखप्रद हैं” ऐसा बार-बार सुनता हुआ भी, स्वामिमुख नहीं बनता। पर जडादि के ही सुख को सम्मुख रखता हुआ सदा दुःख में अटता-भ्रमण करता रहता है।

पौद्गलिक सुखों की-विषयसुखों की प्राप्ति के लिये वह बड़े-बड़े ग्रन्थों का अध्ययन कर विद्वता प्राप्त करके लोकरञ्जनार्थ सुन्दर शैली में प्रवचन कर यश भागी तो बनता है, पर मगशैलपापाणवत् स्वयं उस ज्ञान से आर्द्र नहीं बनता वह आत्मज्ञान रहित ही रह जाता है। मौन धारण करता है, योगसाधना करता है, अश्व व खर-गदहे के समान व्रत नियमादि के बन्धन में बँधकर कष्ट सहता है। विविध प्रकार के आसन भी सरकस के अभिनेता अभिनेत्री के समान करता है। परलोक के सुखों की अभिलाषा में इस लोक सुखों का त्याग कर देता है। प्राणायाम की साधना से पवन को साध लेता है, बड़ा हर्षित होता है यह सब क्रियाएँ बिना आत्मज्ञान के करता हुआ रहने से उसका मिथ्यात्व नहीं हटता

क्याकि सत्य मुक्ति का नही, मामारिज भागा का है । अत वास्तव मे मिथ्यात्व बुद्धि पापमय-मनवृत्ति है जा पर जड़ की वस्तु का स्तब्धम चारा करती है । किन्तु चोरवत बहुत अधिक चोरी की सम्पत्ति एकत्र करता हुआ स्वयं क सताप की वृद्धि करके भी अत मे एक दिन दण्ड का दुख का भागी ब-ता है । अत पर वस्तु सदा हेय और आत्मगुण ही उपायेय है । अहो ! कितना आश्चर्य है ! पर वस्तु भोगादि के प्राप्ति के लिए अगानीजन बौनसा हीन, बौनसा अत्यन्त बहुरर आचरण नही करत । किन्तु य मर परभाव हैं मर नहा । ऐसी सुबुद्धि उन्हें नही हानी ।

वचन, वृत्तियाँ, चित्त पारीरकी वाति मन की स्थिति स्वरूप विषय आदि, हित अहित रति अरति, अन्न पुर नपर श्रेष्ठ भोजन वस्त्र आदि सब वस्तुयें जो तनमोचर हैं, और पुण्य पापादि भायल नृत्पानि स्त्रीपुरुष तपु मकषद इत्यादि सभी तो हय हैं, इनम नित्य संयोग वियोग हाता रहता है, य आत्मा क स्वरूप नहीं पुद्गल के रूप हैं, जो बनते बिगड़ते रहत है, इनम ममत्व ही आत्मा के भ्रमण का मुख्य कारण हैं । आत्मा तो सदा अमर जानादि गुण युक्त अपन ही गुणा का स्वामी है वही मात्र उपादय है ।

पुण्य व पाप दोनों ही पुद्गल दत्त हैं गुह सल मिट्टी का ढंवा और मणिरत्न सत्र जड़-पुद्गल का व्यक्ति भेद है । अर्थात् पुद्गल ही विविध रूप भग्नि रह है अत पुण्य पाप दोनों का अवरोध करन मे स्व का बोध हाता है वही पान पर गमस्त व्याधिया नष्ट होकर समाधि होती है रागद्वेष रूप दाप दूर हो जाते हैं । जस इ धन का अमाय हान पर अग्नि स्वयं बुझ जाता है बीज क अभाव म वृक्ष नही बनता है, मूल बीज नष्ट हा जान पर वृक्ष मूल गाना है, सभी प्रकार भाव वम रागद्वेष बुद्धि का गान हो जान पर जान चेतना प्रकाशित हो जाती है और आत्मा श्रेष्ठपद-सादि अनन्त स्थिति जाने सिद्धपद का वर्णन कर गता है ।

॥ आत्मन् ! आदिवासीन वम उपाधि के वचन के कारण ही तुम्हारी प्रीति पर जडादि पदार्थों मे लग रही है और वस्त्र पर नीलरगवत् जीव पर

रागद्वेष का रग लगा हुआ है इसीलिये तुम जड़ की सम्पत्ति अपनी स्थापन कर दूसरे की पूँजी दबाकर रखने की चेष्टा कर रहे हो तो यह भी स्पष्ट ही चौर्य-कर्म है जो तुम्हारे करने योग्य नहीं है और इसी कारण तुम ब्रह्मस्वरूप हो कर भी जड़ सग से कर्म के कर्त्ता बन गये हो, ऐसी मूर्खता क्या त्यागने योग्य नहीं है ?

जैसे रेशम का कीड़ा या मकड़ी अपने ही मुँह से निकली हुयी लाल या रेशे रूप जाल में बँध जाते हैं, वैसे ही आत्मा भी अपने भाव में बँध जाता है ।

नित्य आत्मा को ईश्वरकृत मानने वाले ज्ञानविहीन मत-क्रियावाद के मत में मत्त बने हुये, ईश्वर की इच्छा से आत्मा का भवभ्रमण-त्वर्ग नरक तिर्यञ्च मनुष्यगति में गमनागमन कहते हैं विविध योनियो उत्पत्ति स्थिति और प्रलय-मरण मानते हैं । उन्हें सर्वज्ञ वीतराग जिनेन्द्र के उपासक कहते हैं कि ईश्वरकृत और ईश्वरेच्छा से भ्रमण न करके आत्मा स्वयं ही कृत कर्म के अनुसार सुगति कुगति में भ्रमण करता है कृत कर्म का भोक्ता भी आत्मा ही है । अन्यकृत अन्य नहीं भोगता यह तो प्रत्यक्ष ही देखते हैं । वस्तुतः आत्मज्ञान के अभाव में जीव अज्ञानी बना हुआ, विविध भाँति के कार्य करने से कर्म बाँधता हुआ, कर्मफल भोगता है । सप्तधातुमय शरीर के संग बंधा हुआ है ।

शंका—एक ही कार्य को अनेक कर्त्ता करते और अनेक कार्यों को एक ही कर्त्ता करते दिखलाई पड़ते हैं । ऐसे ही जीव भी स्व पर आदि आदि कार्यों का कर्त्ता है और जीव का कर्त्ता ईश्वर है । ऐसी मान्यता रखने में क्या दोष है । और जीव भी पर कर्त्ता माना जाय तो क्या हानि है ?

समाधान—ईश्वर कर्त्तृत्वादि मान्यताओं को निराकरण युक्ति आदि-पूर्वक पहले कर चुके हैं । यहाँ तो जीव को पर का कर्त्ता मानने का प्रश्न विचारणीय है । परका कर्त्ता जीव को मानने पर तो आत्मा और जड़ का कभी विभेद ही नहीं हो सकेगा, न जीव मुक्त होने योग्य सिद्ध हो सकेगा । और यह

किमी मो आत्मिक ज्ञान को अमीश नहीं, अत आत्मा स्वस्वका का ही कर्ता है, पर रूप जडादि का नहीं । हाँ ! जब तक आत्मा को स्वल्प का भान-सम्बन्ध ज्ञान द्वारा नहीं हाना तब तक वह स्वयं को पर का कर्ता मानता रहता है । वास्तव में कम, कम का कर्ता और आत्मा आत्म गुणों का कर्ता है । ममी पदाध स्व स्व काय न कर्ता है ।

यह चेतन अज्ञान दशा में किये गये कम के कारण ही दुःखनि में पड़ता है, उस अर्थात् यक्ति या उन्मत्त विधा में अरे गटर में गिर जाता है ।

आत्मज्ञान ही मुक्ति का कारण है, उसी का ध्यान मुक्ति का हेतु है । आत्मज्ञान के बिना मुक्ति कभी नहीं हो सकती । दान, दया, तप जप, उप-नाम, यम व्रत, इन्द्रियभ्रम आदि ये क्रियाएँ सुख्य फल वाली हैं अत आत्मज्ञान के आत्मामिमुख मुक्ति लक्ष्य से की जान वाली क्रिया, दाना का एकत्र करके मन वचन काया के योगों का निरोध करके सिद्धि स्थान मुक्ति प्राप्त होती है यही आत्मज्ञान निर्वाण का स्थान है । कवलज्ञान का हेतु है । अथ सभी आत्म ज्ञान बिना के ज्ञान ध्यानादि क्रियाएँ बाणी में दोष गले कर्त हैं । दोष मुक्त वचन बीनराम के ही होते हैं ।

आत्मस्वरूप की भाषा इस प्रकार की जाती है —

भर्मास्ति एव अत्रमास्तिकाय नामक दो द्रव्य एक एक और अनन्यात प्रदेयी है । काल औपचारिक द्रव्य अन त समयात्मक, और आकाश भी अनन्त प्रदेयात्मक है । जीव और पुद्गल अन त हैं । एक एक द्रव्य में अनन्त अनन्त गुण हैं । एक एक गुण के अन त पर्यायों की परिणति होती रहती है । पद द्रव्यों में जाता एक जीवद्रव्य है जो सभी ज्ञेय को जानने की शक्ति वाला है, अथ सभी ५ द्रव्य चेतन है । मैं चेतन द्रव्य जीव हूँ मैं अन दि अनन्त निद्वन्द्व, महा नानक, महादयवान् हूँ । आत्मा का वास्तविक स्वरूप चिन्तय हे, जो सदव वसा हो रहता है । मैं भी आत्मा हूँ परसे मरा गया सेना देना ?

नवतत्त्व के विकल्प तीनों योगों—मन, वचन, माया के नक्षत्र, इस आत्मा में रहते हैं, इनमें योगों में रहते हुए भी आत्मा नित्य इनमें अग्रगृह्य रहता है, ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मों में वेष्टित होने पर भी आत्मा चेतना का स्वामी स्व स्वरूप में ही रहता है। यह मुमति का ग्यामी है, इनमें मुमति का अंग भी नहीं, अपने ही ज्ञानादि धन में मग्न रहता है। परम अग्रगृह्य ज्योति नित्य सद्वस्त्व है। ऐसा जितेन्द्र वसित आत्म स्वरूप ही देवचन्द्र ग्रन्थगार को उद्भूत है। इसी तत्त्व को जैनशास्त्रों में नित्य अनित्य, एक अनेक, नद जनद आदि नवों में बतलाया है, आत्मा मूढमातिमूढम, स्यूनातिन्यून, जन्पी, जगन्ध कहा गया है। लोकानोक में तीन कालवर्तों होने वाले समस्त द्रव्यों के उत्पन्न द्रव्य ध्रुव को ज्ञान से देखने जानने की शक्ति इस आत्म तत्त्व में रही हुयी है। मन्त्र-विश्व उस ज्योति में समाविष्ट है। ऐसा परमान्म स्वरूप आत्मा उक्त महान्म को धारण करने वाला है। वही परम आनन्दकन्द, देवचन्द्र ने भी ज्ञान लिया है।

यद्यपि जीव अपने पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मफल को भोगता है; किन्तु सम्यक् ज्ञान दर्शन युक्त सम्यक्त्वजीव के बन्ध नहीं होता, क्योंकि वह वैराग्य भावयुक्त है; बन्ध का कारण आसक्ति भाव है; अन ज्ञाना अवबन्धन रहता है।

शंका—आपने ज्ञाता को काम-भोग मुक्त दुःखादि भोगने हुए भी अवबन्धक कहा, यह हमारे समझ में नहीं आता, ज्ञाना को पूर्ण अवबन्धक मान लेने पर तो सारा व्यवहार जो मुनि, आर्यागें श्रावक-श्राविकाएँ जो भी व्रत नियम, तप, जप, इन्द्रियदमन, दान शील, दयापालन आदि करते हैं; वे सब निष्फल बेकार कही जायेंगी। और बेकार होने में ये सब व्यावहारिक क्रियाएँ अत्यन्त कठिन होने के कारण माधकजन छोड़ देंगे। इस प्रमाण तो चतुर्विध मद्भ का ही लोप हो जायगा। फिर तो सभी लोग प्रमाद मग्नि होकर निष्क्रिय बन बैठेंगे; जबकि जिनागम ज्ञानमुक्त पुरुषार्थ द्वारा ही मुक्ति की प्राप्ति मानत है फिर अकेला ज्ञान मुक्ति कैसे प्राप्त कर सकता है?

समाधान—सुम्हारी शक्ति उचित है, हमने धामिन्—विद्या त्याग
तपादि का निषेध बच दिया ? वह तो आशय का—नवीन कर्मों के आगमन को
रोकन और सत्तागत कर्मों को दाय कर देने के लिये आवश्यक ही है । किन्तु यथा
पूरा हो तभी मोक्षफल दायिका है अतः ज्ञान की प्रधानता है । हम तो
आध्यात्मिकता की बात कर रहे हैं ।

अब विषय जाह्नवी विषय के विचार को जान कर उसका उपचार
करके उस दूर कर गया है । यह स्वयं विषय की रूपता है परन्तु वह मूर्च्छित
मूर्ति होता है । जैसे माग विषयकारक मात्र का जाता अपना अज्ञान नाम के भुज में
जाल देने पर भी स्वयं अद्वितीय रहित रहकर नाम से मुक्त करता है वैसे ही
जाह्नवी प्रत्यक्ष रूप में मोग से भागता भोगते हैं, किन्तु अलिप्त भाव से बतने से
उसे बाध नहीं होता । अतः वही मरत श्रीकृष्ण और भौतिक आदि ऐसे ही
आत्मा के । अनासक्त भाव से करने में मरत को आत्म भवन में अतिरिक्त भावना
करके स्वयं केवलमान न करा । श्रीकृष्ण के भौतिक आदि में तीव्र नाम कम
बाध दिया एकात्मता की बात यह ज्ञान का ही प्रतीक था ।

एक और दृष्टान्त से भी इसे समझाते हैं । अस विमोचन में दावात्म
मग । वह पंचते हुन अपनी उजातामा से घाम नगर, बत उपवन गिरि आदि
को मम्म करन लगा । तब विमोचन मिटजन न मात्र द्वारा अग्नि दागि का
वधि कर उत बुझा दिया, किन्तु सारा ताप मिट जाता है । और ज्ञान मात्र का
जाता दागि स्वयं को अभिमान कर अग्नि की दहन तापन शक्ति से अभिभूत
होकर उगम उल्लसत बुझने दूर उधर घूमन नृत्य करती है किन्तु भी वे जमने
नहीं बत ही ज्ञाना अग्नी वातावरण से बाध की सक्ति की अद्वितीय करके पूर्व
दहन निराश्रित कम को भावना हुआ जा अद्वितीय रहता है ।

प्रश्न फिर भी ज्ञानीम स्वयं बहता है—आपका कहना तो यह है फिर
भी मेरे मन का मैं हूँ दूर नहीं हूँ रहता है । मुझमें मग्न मग्न मग्न भी भोगीति
में भाग भागता हुआ अद्वितीय है, आपकी यह बात कैसा मान लें ? तबका अद्वितीय

मानना न मान्य सम्मत है न युक्ति मङ्गत ! उपर्युक्त दृष्टान्त व्यावहारिक है, 'मन्त्रशक्ति युक्त पुण्य ऐसा कर सकते हैं' यह मन्त्र है किन्तु आत्मा जब तक मन्सार वर्ती है तब तक सर्वथा अव्यक्त होता नहीं, चीतराज ने भी एक घाना वेदनीय का वस्त्र तो माना ही है फिर चतुर्थ गुणग्यानवर्ती सर्वथा अव्यक्त रहता है ! यह कैसे माना जाय ? अतः पुनः स्पष्ट करके समझाने की कृपा करिये ?

समाधान—जैसे कोई सद्गृहस्थ या ब्राह्मण वणिक् किसी राजा की सेवा में आजीविकार्य सेवक बनकर रहता है, राजा की आज्ञा द्रव्यो कि मद्य लाओ ? हमें व हमारे परिजन मित्रादि को भी पिलाओ । तब वह आज्ञा पालन के लिए मद्य लाता है, चपक प्याले आदि पात्रों में भर-भर कर नृपति आदि मयको देता है; स्वयं को तो मद्य गन्ध भी गचिकर नहीं लगती, किन्तु परबल होने से राजाका पालन करता है; वैसे ही पूर्वकृत कर्मबल सम्पन्नी जीव ज्ञाना होने पर भी निकाचित भोग्य-वर्म तो भोगता है, किन्तु अन्विपूर्वक भोगने में निरासक्त भाव के कारण अभिनव कर्म का बन्ध नहीं होता ।

निश्चयनय से आत्मा मित्र के समान है क्योंकि जिनेश्वर भगवान् ने सभी द्रव्यों को स्व-स्वभावगत माना है; अतः आत्मा स्वरूप में कर्ता स्वभाव का ही है, परमाव-कर्मोदि का नहीं ।

सर्वद्रव्य स्वभाव से रहते हुये स्व स्व कार्य करते हैं कोई द्रव्य अन्य द्रव्य का कार्य नहीं करता; किन्तु अनादिकालीन कर्म सम्बन्ध के कारण मिथ्यात्वबुद्धिजन आत्मा मूढ बना हुआ सदा परभावलीन उन्ही विषयकषायादि में जो परभाव है; अहंबुद्धि समत्वबुद्धि रहता है । कर्म के भ्रम में पड़ा हुआ आत्मा इस शरीर पर प्रेम बढाता है, जब आत्मज्ञान होता है तब शरीरदि पर वस्तुओं से प्रेम हट जाता है और यह अनैतिक कार्य त्याग देता है, रागद्वेष को दूर कर सर्वत्र पर-वस्तुओं पर निर्ममत्व बना रहता है ।

सम्बन्ध ही जाता है तब आत्मा में फिर कर्म का रच मान का प्रपञ्च नहीं रहता, भोगादि से अत्यन्त अरुचि बढ जाती है। वञ्चक स्वभाव, जो आत्मगुणों को भुलाकर परमाव में रमण कराता है उसे गैरकर निकाल देता है। शुद्ध स्वभाव ही बन जाता है। परमाव समुद्र में चिरकाल में बार-बार जीघ्र जीघ्र रागद्वेष अमर में हूबने का चिर कालिक स्वभाव नष्ट कर देता है। ज्ञान के प्रकट किरण दीप्त कर अज्ञान-तिमिर का नाश कर देता है। आठ तमों के मल को माफ करके आत्मा के आठ गुण वरण कर लेता है। ऐसे परमज्योतिर्माय, मदा-काल जयवन्त रहने वाला, आत्मा अज्ञान तिमिर को नष्ट करने के लिये नृप समान है। यह शुद्ध स्वरूप ही ध्येय है।

कर्त्ता भोक्ता रूप अभिमान के विचारों का भार उतार कर स्थिर भाव प्राप्त कर लेता है। आत्म गुणों का घात करने वाले घाती-कर्मों के बन्ध को तोड़ डालता है, अमन्द आनन्दकन्द हर्ष के समूह को प्राप्त कर लेता है। फिर शुद्ध, शान्त, अनन्त, अहत जिसे दूसरा नाश न कर सके अथवा श्रुति रहित पूर्ण, विचित्रवृत्ति ससारी जीव द्वारा अनुभूत, परज्योति, सत्य, नित्य सत् रूप रहता है। सर्व भेय अभेय ज्ञेय द्वारा हेय कर-त्याग कर शुद्ध बुद्ध ब्रह्म स्वरूप मेरा आत्मा सदा काल रहा हुआ है। यह आत्म भावना करने में मुक्ति की दशा का अनुभव होने लगता है। यही मुक्ति का मार्ग है। वैराग्य का मौन-मय उसे ही प्राप्त होता है जो रत्नत्रयी-ज्ञान दर्शन चारित्र्य हैं उन्हीं के स्वरूप आत्मा का सवेदन अनुभव करके मोह का उच्छेद करने की प्रणाली ग्रहण कर लेता है। आत्मज्ञान की कला जानने के लिये निर्मल बुद्धि से सवर-संयममय बन जाता है। वह शरीर धारणार्थ और कर्म के उदय से जो सुखदुःखादि होते हैं, या मन वचन काया की शुभ प्रवृत्ति होती है, वह भी कर्मोदय से होती है।

‘मैं कर्म का कर्त्ता भोक्ता हूँ’ ऐसा अज्ञान जितने काल तक मुझे रहा उतना काल शुद्धात्म का अनुभव न होने से मैं अज्ञान का भवन बना रहा। अब सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव के सरस वचनामृत का पान कर ज्ञान्तर रम का अनुभव कर रहा हूँ। इसी वचन सुधा के चिरकाल पान करने से अनेक आत्मा मुस्थित हो मुष्टि धारण कर श्रेष्ठ अजर अमर परब्रह्मपद को प्राप्त कर चुके हैं।

वस्तुतः आत्म ज्ञान न अभाव में स्वयं को पर का कर्ता मानना मानता रहता है। एक आत्मा के ज्ञान बिना भव भ्रमण करता है। आत्मा का वास्तविक स्वरूप जिनवचन में ज्ञान जन पर अवर्णा अभोक्ता भाव उदित होता है। ये रागद्वेष कर्मोन्मत्त के कारण से होते हैं "य मरी सम्पत्ति नहीं, मैं इनका स्वामी नहीं हूँ" ऐसा भाव चित्त में धारण करने वाला साधक स्वयं को इन से मित्र मानता हुआ रहते तो वह सगार में भ्रमण नहीं करता। एक दो भव में अवश्य मुक्त हो जाता है।

जब तक अज्ञानज य गाढ़ अपकार रत्न में कमत्रय में निमिषा घनता रहा तब तक विभाव ही था वह जिससे रागद्वेष की रेखा पर एकीभाव की एकरूप का बुद्धि रही। अब गिरिनदी के उपल के समान विरवाला से जल के प्रवाह में टकराते खाते खाते उपल जल गीन बन जाता है वैसे मैंने भी विकरण से भेदज्ञान प्राप्त कर लिया है। तब मैं पर-जड की रीति त्याग दो और स्वात्म पूरा प्रज्ञा से अब मरी विच्छुति व विवृति नहीं रही, अपने ज्ञानादि गुणों का धारण करने की प्रवृत्ति निवृत्त हो गया हूँ। ऐसा सकल्प करने से जीघ्र मुक्त होता है।

अन्ते ! मैं अनादि काल से अज्ञान निद्रा में लीन मुप्तावस्था में पर जड वस्तुओं का ही चिन्तन डकड़ा और भाग करता रहा। किसी शुभ कर्म के उन्मत्त में जाग्रत होकर तत्त्वज्ञान भी पाया। कि तु जसे दरिद्र को सम्पत्ति मिल जाने पर वह अहङ्कारी बन जाता है, वस मुझ भी अहङ्कार हो गया कि मैं गारी बन गया हूँ। उसी अहमाव के कारण कृतृत्व भोक्तृत्व बुद्धि का भ्रम हो गया और ज्ञान असह बन गया। शुद्ध आत्मा का विचार नहीं किया।

आत्म ज्ञान अत्यन्त गहन विषय है। आत्मा विराट और अनन्त विष्णु अस्पृष्ट स्पृष्ट, निरन्तर स्पृष्ट रूप में बाह्यात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा रूप में है। आत्म स्वरूप की विभूति अनन्त और भात है, वह प्रकट हो जाने पर जिसकी जड पुद्गलपदार्थों से प्रीति नष्ट हो जाती है, उसे ही स्याद्व्याद द्वारा स्वानुभूति का आवागमन कर आनन्द होता है। वह ज्ञानाग्नि अग्न्य सम्पत्ति के

महाभोज में लीन हो जाता है। वह बुद्धिनिधान निर्वाण स्थान सम्प्राप्त करने को सदा सावधान-अप्रमत्त हो जाता है ऐसा ही अप्रमत्तभाव हमारा छह है।

आत्मज्ञान के बिना महाव्रत पालन, तप करना, आतापना लेना, यम नियम आसन प्राणायामादि योग साधना का प्रबल अभ्यास करना, धुंधा तृष्णा शीत ताप भूमिशयन अनुकूल प्रतिकूलादि बार्हम परिषद् में भी अचल रहना, इत्यादि सर्व साधनाएँ निष्फल निर्नायक मन्व्यवत् (मुक्ति फल की अपेक्षा) रहती हैं। एक आत्मा के ज्ञान लेने पर सब ज्ञान लिया जाता है—“जे एग जाणइ, से सब जाणइ” ऐसा आगम वाक्य है। अतः भेदज्ञानयुक्त आत्म ज्ञान से ही सफल होता है। अतः निरन्तर अनन्त तेजः पुञ्ज में योगित, ज्ञानमय दृष्टि से अज्ञानमल रहित अचल अमल तत्त्व का ही ग्रहण करना चाहिये, इसमें ससार कर्दम में रहता हुआ भी आत्मा कमलवत् निलेप रहता है। आत्मानुभव के मुख की तुलना में ‘इन्द्र चन्द्र चक्रवर्ती’ पद के मुख सुधा के सामने द्वार के स्वाद के समान है। “मैं परमात्मा स्वरूप हूँ” अर्थात् जैना परमात्मा है, वही मेरा स्वरूप है। ‘सोह’ के ध्यान से ही वह अगम परब्रह्म गम बनता है—जानने योग्य बनता है। अन्तरात्मा इसी में लीन बनते हैं।

सम्पन्न दर्शन रहित बहिरात्मा, सारे आगमों का अभ्यास कर जगत् में अभिमान से विचरते हैं, स्वयं को पण्डित कहलाने में गौरव का अनुभव करते हुये विविध भाँति के वाद विवाद करते रहते हैं वे अचेत हैं। उनका देहाध्यास-देहात्म एकत्व भाव छोड़ते नहीं। केवल पढ़ने लिखने में समझ लेने से कुछ नहीं होता। उसका पढ़ा हुआ पाठ (तोता रटन्त) मात्र ही रहता है।

मैं बहुत समय पर्यन्त अज्ञानी रहने में अपने रूप को ही भूल गया था; वह अब स्मरण में आ गया यह वीतराग की वाणी का ही प्रताप है; मैं भी हूँ तो ससार में ही, किन्तु सबके-परभाव के मध्य रहता हुआ भी भव के जाल से मुक्त हो गया हूँ। मैं सत्य ज्ञान चेतनावान् अत्यन्त उज्ज्वल सान्त अनन्त सज्ज्ञान मुझे मिल गया है। हे सज्जनो। आप भी उन ज्ञानबीज निरजन अक्षय अनुपम म्याद्ववादमय श्री जिनवचनों का वास्तविक रहस्य जानने का प्रयत्न करो।

आत्मा से आत्मज्ञान की मधन कर तब भानु के प्रकाश के समान आत्मज्ञान की ज्योति प्रकट हो जाती है और क्षण क्षण बढ़ने लगती है। जैसे बाँसो का परस्पर घषण करने पर अग्नि प्रकटती है, वैसे ही आत्मज्ञान से ऐसी ज्योति प्रकट हो जाती है। इसी कारण आत्मज्ञान आत्ममग्न, दशविरति मुदती है, और महाप्रापारी भी क्षणश्रेणी पर आरोहण करते मुक्ति सदन में पहुँच जाते हैं। अब आत्मज्ञान के अतिरिक्त अन्य भुक्ति मांग नहीं है। सच्चे साधक ही आत्मपाठ ही पढ़ते हैं।

आत्मा की सुख दशा जब रज्जु में सफ का भ्रम हो जाता है वैसे ही ज्ञानी मिथ्यादृष्टि को दह्युद्धि रहती है वह गरीब पर ही आश्रय रखता है। इससे उसका भ्रम बढ़ता ही रहता है।

ज्ञान व धर्मग्रन्थ में कहा हुआ आत्मा भगुपी के समान अथ की स्त्री रूप जट भक्तुजा का पक्कन दौड़ना है। सब रागद्वेष की लीह वेदियों में जलडा हुआ आत्मा ज्ञान निद्राधीन रहकर नान दृष्टि व तेज की दया दता है। इसमें पर वस्तु पर, आत्म बुद्धि रख कर भयभीत हुआ स्वयं का भी उह अपित कर देता है, उह ही परम भिन्न मानता है। इस प्रकार अपने गुण प्राप्त किए बिना आत्मा प्रांत भव भ्रमण करते हुए स्वगुण को तिरोहित करता रहता है।

ज्ञान चेतना की जाग्रत दशा

ज्ञान चेतना जाग्रत होने पर आत्मा अपनी अनन्त शक्ति—'जिसमें लावालाक समा सकते हैं' जाग्रत हो जाती है। इस आत्मा का स्वरूप जानने पर पड़द्रव्य व सभी भाव जान लेता है। क्योंकि ये पड़द्रव्य आत्मा व अनुगामी कहलाते हैं क्योंकि आत्मा ही माग चेतन द्रव्य है तब तो अचेतन जड है। एक आत्मा के ज्ञान बिना सबशास्त्रों की जानकारी केवल धम है। जिस व बुद्धि रहती है अथ शास्त्रों का अभ्यास तुल्य गणनवन् निष्फल है। ज्ञान होने श्रिया भी इसी प्रकार निष्फल है। उस आत्मज्ञान का अनुभव होना पर समार का भय पलायन कर जाना है, आत्म विश्वास पर जात प्रेम जाग उठता है। जब सूर्योदय होने पर सारा जगत् जगमग हो उठता है, भयानक

का नाश होने पर घटपटादि सभी पदार्थ दृष्टिगोचर होन लगने हैं, उसी प्रकार आत्मज्ञान के तेज में रागद्वेष की ग्रन्थी टूट जाती है, अग्निव कर्म नहीं लगने और मुक्ति सम्मुख ही दिग्गने लग जाती है । गंगा परमानन्दकन्द देवचन्द्र को मुखकर अर्थात् देवों में चन्द्रवत् वीतराग देव जिसमें अनन्त सुख या अनुभव करते हैं । धर्मात्मा व्रत्तिजन और मुनीश्वर उसी का ध्यान करते हैं ।

आत्मा जब आत्मध्यानलीन रहता है, तब कर्मबन्ध मल जाता है, क्योंकि उसे अन्य कुछ भी कल्पना नहीं उठती । अग्नि में ईंधन न होने तो स्वयं बुझ जाती है । वैसे ही मन उन्मिषादि रागद्वेष के अभाव में विषय ग्रहण करने हुए भी आत्मा को बांधने में असमर्थ रहने है । अतः परम सुख का ध्यान आत्मगुणों में लीनता है, अन्य माधनाएँ व्यर्थ हैं । यही मूल निर्मलपद है और सब तो केवल जन-भूतियाँ हैं । यही शान्तरस और मुक्तिपथ है, इसे ही कर्मावृक्ष को छेदने वाला कुठार नमजो । यह आत्मा ही जानवान् भगवांश्च श्रेष्ठ जानादिगुणगुणयुक्त है । इसे ही भजो, इसी में रमण करो, इसे ही जानने का प्रयत्न करो । किन्तु यह मार्ग सर्वम गों से दुर्गम है विरहने ही बनकर उद-स्थान पर पहुँचते है ।

हे जानिन् ! तुम स्वयं ही अज्ञान के हेतु बने हुये हो । इसी से सब में भ्रमण कर रहे हो । पर के जड़ पुद्गलमय शरीरादि पदार्थों के प्रति वर्त्ता बुद्धि हो रही है । चित्त में मुख सम्पत्ति पाने की तृष्णा लगी हुयी है । शुद्ध बुद्धि माने मुक्तिजन आत्मा को जान उसी का ध्यान करके हुये निर्वाण प्राप्त करते हैं । यह आत्मा स्वयं ही अपना रक्षक तदवनता है जब कि अपनी चेतनता-ज्ञान चेतना का अभिन्नापी बनना है, अतः ज्ञान चेतना में ही रमण करो ।

सम्यग्-दृष्टि जन भोगों का संयोग निकाचित कर्मवश मिलने पर भोगते तो हैं, किन्तु गृहस्थ रहते हुये भी विरक्ति भाव है, आत्म भावना से भावित रहते हुये श्रेष्ठ आत्मज्ञान की कला की अर्चना-पूजा करते हैं । वे मोह कर्म की कारा को तोड़कर निकल जाते हैं । संसार के मुखों में परिचय नहीं रखते ।

उत्तम प्रसन्न नहीं हात । अपन हृदय में सम्यक् प्रकार से आत्म स्वरूप का ध्यान करत हूय कम के भ्रम को निश्चय ही नष्ट कर देत हैं ।

जिन के निराचित भाग कम नहीं होते व मक्त्वागी बन जात हैं । निरागी व्यक्ति के समान वे कडवी औषधियों का काढ़ा पीना निरर्थक समझते हैं । आनुरता दित अतुर व्यक्ति जैसे देह का नीराग रखन के लिये कुपय्य आहार विहार नहीं करते बस ही वे त्यागीजन भी आत्मा का नीरोग रखन के लिये विषय वषाद्यानि कुपय्य का सबन नहीं करते । ज्ञान मोह के अभाव में चेतन अपने नि मयमूर्ति चेतन का सृष्ट ही स्मरण रखते हैं और 'भाग्य का सभाग होने पर भी नहीं भोगत । ऐसे सा धुजन मन्त्र ज्ञान को ही चिरा में धारण करते हैं ।

अन्तर तत्त्व को आत्मा की दृश्य लन पर गूँथल्य होने से जन समस्त वस्तु प्रकाशित हो जाती है बस ही स्वपर का स्वरूप आत्म जानी के सम्मुख प्रकाशित हो जाता है । वह ससार में रहते हूय भी जात की रीति विषय भोग नहीं करते श्याग देते हैं । अपने गुणों से उत्तम बन जाते हैं । जब तक मोह की पेरी में घुसता रहता है तब ही स्व भव क स्वप्न दयता हुआ उत्तलित होता रहता है । मोहनिष्ठा से जाग्रत पर तो अपनी मध्याध ज्ञानमय स्थिति का भान हो जाता है । शुद्ध निरजन ध्रुव चेतनमय आत्मा स्वयं में ही समाविष्ट होजाता है ।

ऐसे आत्मज्ञान का अभ्यास नहीं करता वह कम व भ्रम को सन्ध बनाता रहता है पाँचो इन्द्रिया व विषय प्रपञ्च में चिरा को फसा कर इ ही से प्रमदस की अपार वृद्धि कर जाता है । अर्थात् विषय की असीम नृणा हो जाती है । उससे कम की उपाधि ही सलान पर भाग्य में निष्ठा रहती है, इस जगत् में नव नव वेश शरीर धारण कर सुख दुःख भोगता रहता है । वही आत्मा जब आत्मज्ञान पा सता है तब स्वरूप में रहकर पञ्च आनन्द की प्राप्ति में असीम वृद्धि कर सता है । क्योंकि आत्मज्ञान की ज्योति में ही ऐसा परम रम स्फुरित होता है जिसमें अहङ्कय रसायन है जो सब दोषों को नष्ट कर देता है । लोकात्मक का विलोपन करने वाला अमल निमल तेज स्वरूप है । हठ यागादि की क्रिया बिना हा उसकी साधना की जा सकती है । जितने आत्म

धारिद्र का विस्मरण नहीं होगा। ओम्दे देवचन्द्र गणि का कवन है कि आत्म-देव की सेवा करके ही आत्मा इस संसार भ्रमण कगने वाले पर-नाम शोध लोभ मोहादि की टेव-बादन को दूर कर सकेंगे।

चेन्नन ज्ञानचेतना समताभाव युक्त, परमधर्म, गुणों ज्ञानादि का स्थान है। ज्ञानादि की आगधना में श्रेष्ठ निर्वाण पद प्राप्त करता है, अतः समता में प्रीति रखना उचित है।

कवि का लघुता प्रदर्शन

मैंने इस ग्रन्थ में जैनागम उन्नतन वर जो कुछ विरुद्ध कह दिया हो, उसे वे पण्डितजन जिनकी बुद्धि नुबुद्धि है, वे शुद्ध कर लेंगे, क्योंकि छद्मस्थ द्वारा भूल हो जाना स्वभाविक है।

हे सज्जनो ! आप लोग हम क्षीर न्याय से गुण ही ग्रहण करेंगे और क्षीर रूप नीर का पश्रियाग कर देंगे। 'शाम्भवा अयं और तत्त्व अभिज्ञात कर स्वीकार करेंगे ऐसा विश्वास है। क्योंकि ज्ञानिजन बोधि-मन्त्रवन्त्र प्राप्ति के लिये और निश्चय स्वरूप जानने के लिये जो शास्त्र-ग्रन्थ हैं उन्हें ही पढ़ते हैं, और परजड की सम्पत्ति का त्याग कर देते हैं अर्थात् भौतिक शास्त्र नहीं पढ़ते, उन्हें दूर से ही पश्रियाग कर देते हैं।

पूर्व कवि के गुण वर्णन

अच्छे शाम्भो के पाठक, आठमद क निवारक 'हमराज' हमों में राजहम जैसे हैं, उन हमराज के बनाये एक ही अट्टाडम कलश रूप यह ग्रन्थ था। वे हमराज ज्ञान के ज्ञाता और दर्शन-सम्यग् दर्शन के स्वामी थे, तत्त्व परीक्षक, तत्त्व के निधान थे। उनका रचित ग्रन्थ निर्मल सर्वग्रन्थों का गिरताज था। वह स्वपर भेद कारक, पर ब्रह्मनाथ का धारण कराने वाला था। उसी का आशय लेते हुए यह ग्रन्थ भी शुद्ध श्रद्धावान् जनों के लिये नृजन किया गया है।

मैंने यह ग्रन्थ हिन्दू धर्म के पालक नृपति की राजधानी बीकानेर में मुल पूर्वक चातुर्मास काल में निवास करते हुये ज्ञानाम्यासार्थ बनाया है।

ग्रन्थ प्रशस्ति गुरुपरम्परा कथन

वर्त्तमान काल में विराजमान, सन्तागमवेत्ता, विश्वविख्यात रानी, जिनेश्वर प्ररूपित धर्म पर स्थिर प्रतीतिवाल, अन्य मतों की बातों में विरक्त,

प्रथम दादा श्री जिनदत्तामूर्तिस्वर द्वारा कथित श्रेष्ठ कठोरतर सरतर' शुद्ध रीति से चारित्र्य के पालक, पुण्य प्रधान और सुमति के मागर श्री सुमतिसागर, माधुरंग रक्षित श्री माधुरंग, और राजसार हैं ये सवपाठक गिर गेहर, गुण धान्, मध्यजन के स्रजसमान, जायदश में विचरण करते हैं ।

उन्होंने व विनोत शिष्य, परभीति रहित साधुरीति नीति व धारक, सुप्रगुणधान्, आत्मपानी, आत्मधर्मधर श्रेष्ठ सिद्धांता व वाचक अत्यंत उपजातचित्त 'ताम्रधन' नामक प्रवर हैं । उनके निप्य मागसरापर व हम सहग 'राजहम' अथर नाम वीपचन्द, उत्तम प्रधान गुणों पानदशनादि में उद्यम धान् गुणगणों व धाम रूप हैं । उन्होंने के अन्वेषासी देवधन्म न यह म्यचेतन व श्रीगङ्गासहस्र द्रव्यप्रकाश' ग्रंथ बनाया है ।

इस ग्रंथ की रचना में शुद्धमन धान् श्री आर्गादाम व मुम अत्यंत सहायता भी है, अपने मित्रों को समझाने व लिय इस ग्रंथ की रचना करवाई है ।

इस शास्त्र के श्रोता आत्मस्वभावरत शोध की दूर रचने वाले श्री मिट्टूमल भैरवदास, भेडशाम, मूलचन्द, पानचन्द, सलराज, श्रेष्ठ पारसपापान व रवमाध वाल पारसमल, सोमचन्द आदि जीव-सत्त्व पर दृढ़ आस्था रखन वाले ज्ञानाग्नि त्रिगुणधान् अध्यात्म ध्यानी 'मुलताने' तामक नगर के निवासी भुजान श्रावक हैं । उन्होंने का धम प्रम इस ग्रंथ की रचना में प्रेरक है । इनमें मुम पर्यायपर पद द्रव्यों का गा है ।

जो सत्स अध्यात्मदीप्ति की मानन हैं वही वास्तविक जन हैं । वही इस ग्रंथ का वाचन मनन ज्ञानामृत रस पान के लिय करेग । गुणा का व समानों का पठवानकर हृदय का स्थापन कर, शुद्ध चिन्तन विमय, अगम प्रकाशत्व का ग्रहण करग, वही आश्रय है सब समीप्य हैं । शुद्धनय से परमात्मा का स्वरूप ही पारमा का स्वरूप है । इस स्वरूप की जागरूकी ही माग माग है । इस ज्ञानन वागा पर माह वग नहीं हाना चलन ससार भव भ्रमण नहीं करता । ग्रंथ का मूल बीज उपादान यही है ।

भय लक्ष्मी व 'मेड' 'गुड मयम अर्थात् १७६७ में विश्वम सधन का मान एवं समझना भय व मेड ७, अरुणा व भद ६ और आश्वय १५ स्वरूप सम

